मालवीय प्रकाश

मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान की हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष -6 | अंक - 12 | जयपुर | जनवरी - मार्च 2023 | पृष्ठ संख्या - 1

निदेशक की कलम से ...

आचार्य (डॉ.) नारायण प्रसाद पाढी

निदेशक- मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, जयपुर

संस्थान के सभी सदस्यों से मालवीय प्रकाश के ज़रिये, एक बार पुनः मुखातिब होने का अवसर मिला है, इस बात की मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। मुझे संस्थान की सेवा करते हुये अभी बहुत ज्यादा समय नहीं हुआ है पर मैं आप सभी का बहुत शुक्रगुजार हूँ कि इस अल्प समय में आप सभी के सहयोग से संस्थान ने सभी क्षेत्रों में बहुआयामी सफलता हासिल की हैं।

यह एक सनातन सत्य है कि जब हम व्यक्तिगत स्तर पर उन्नति करेंगे तब ही समाज एवं देश के विकास में सहयोग कर सकेंगे।

आज हम भारत के 31 राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थानों में छठा स्थान रखते हैं। मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान की गत वर्ष की उपलिब्धयों में एक नज़र डालें तो हम पायेंगे कि स्नाकोत्तर पाठ्यक्रमों में पी.जी. में 565 और विविध शोध कार्यक्रमों में 803 प्रवेश लिये गए। छात्रों की उत्कृष्ट उपल्बिध 2022-23 में 581 छात्रों का प्लेसमेंट रहा, जिसमें औसत पैकेज 14.84 लाख प्रति वर्ष तथा अधिकतम 62.75 लाख प्रतिवर्ष रहा। करीब 15.05 करोड़ की प्रायोजित परियोजनायें संस्थान को स्वीकृत की गई एवं 8.67 करोड़ की परामर्श परियोजनायें दी गई। मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान जयपुर ने शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में प्रमुख राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ समझौता ज्ञापन भी हुये हैं।

संस्थान के गौरवपूर्ण इतिहास को बनाये रखते हुये, इस वर्ष स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी, यूएसए, ऐल्सवियर द्वारा संयुक्त रूप से जारी शीर्ष 2 प्रतिशत विश्व वैज्ञानिकों की सूची (2022) में 12 संकाय सदस्यों को शामिल किया गया है।

मुझे यह बताते हुय अत्यंत हर्ष हो रहा है कि राजस्थान के माननीय राज्यपाल श्री कलराज मिश्र ने राजभवन में मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा हिंदी में प्रकाशित पुस्तक राज्यभाषा कार्यान्वयन मार्गदर्शिका का विमोचन किया। संस्थान के केन्द्रीय पुस्तकालय को 1 करोड़ से भी ज्यादा की राशि खर्च कर नये डेटाबेस, ई-पुस्तकों व नये शोध ग्रंथों से सुशोभित किया गया है। संस्थान के सभी सदस्यों के उज्जवल भविष्य की शुभकामनाओं के साथ।

मेरा संस्थान के सभी विद्यार्थीगण शिक्षक, अधिकारी एवं कर्मचारीगणों से अनुरोध है कि हम मिलकर यह प्रतिज्ञा लें कि संस्थान की प्रतिष्ठा, गुणवत्ता एवं राष्ट्र की उन्नति के लिये आपसी प्रतिबद्धता को और मजबूत करेंगे।

आचार्य नारायण प्रसाद पाढी

उच्च शिक्षा में नैतिक शिक्षा और राष्ट्रवाद का महत्व

हमने कई बार सुना और पढ़ा है कि जापान के लोग अपने नैतिक दायित्व को निभाने के लिए विख्यात है। कई दार्शनिक विद्ववानों ने अपने यात्रा वृतांतों में इसका उल्लेख किया है। शायद यही कारण है कि विश्व की सभी बड़ी मानवीय त्रासदी को झेलने के बाद भी वो एक राष्ट्र क रूप में विश्व मानचित्र पर ना केवल प्रखरता से उभरा बल्कि एक विकसित राष्ट्र के रूप में खुद को पुनः स्थापित भी किया। इस उदाहरण का प्रयोजन सिर्फ इतना है, कि हम समझ सके की नैतिक शिक्षा आदर्श समाज निर्माण प्रक्रिया में एक घटक मात्र नहीं है, बल्कि यह इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है।

शिक्षा एक माध्यम है जो व्यक्ति के विवेक को विस्तार देती है, किन्तु जब हम बात करते है उच्च शिक्षा की तो यह एक महत्वपूर्ण प्राणाली है, जो राष्ट्र की बौद्धिक सम्पदा को लगातार बड़ा रही है। इसका लक्ष्य केवल व्यक्ति को व्यावसायिक रूप से सक्षम बनाना नहीं होना चाहिए, बल्कि उच्च शिक्षित व्यक्ति का चिंतन सृजनात्मक हो, वो सवेदनशील हो समाज के प्रति अपने राष्ट्र के प्रति। नैतिक शिक्षा एक ऐसी शिक्षा है जो हमें सही और गलत का बोध करवाती है, यह हमें अपने कर्तव्यों को बिना किसी दबाव के स्वयं की प्रेरणा से निभाने के प्राकृतिक स्वभाव को निर्मित करती है।

आज हमारी युवा पीढ़ी जिसकी विचारधारा मनोरंजन के विभिन्न अवांछनीय, अनियंत्रित, माध्यमों से प्रभावित है। छद्म आधुनिकता के दुष्प्रभाव से यह पीढ़ी नैतिक मूल्यों से दूर होती जा रही है। उच्च शिक्षा में नैतिक शिक्षा का समावेश कितना महत्वपूर्ण है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भोजनशाला में रोज देखा जा सकता है, जहाँ देश के प्रतिष्ठित संस्थान में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे कई

युवा प्रायः भोजन थाली में छोड़ देते हैं। जलपान गृह में तथा कूड़ापात्र के आस-पास फैला कूड़ा कई बार हमें सोचने पर मजबूर कर देता है कि जब उच्च शिक्षित समाज भोजन, पर्यावरण और स्वच्छता के लिए संवेदनशील नहीं है तो शेष समाज से इसकी कितनी अपेक्षा रखी जा सकती है? नैतिक रूप से कमजोर व्यक्ति चाहे कितना भी प्रतिभावान क्यों ना हो, वो एक आदर्श समाज के निर्माण में कभी सार्थक भूमिका नहीं निभा सकता। ठीक उसी तरह नैतिक रूप से कमजोर व्यक्ति की राष्ट्रवाद की भावना भी कमजोर होती है, उसका चिंतन व्यापक ना हो कर, व्यक्तिगत होता है। हम ऐसे समाज जिसका राष्ट्रवाद कमजोर हो, उसे अंगीकार करके कभी उस राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते जिसका संकल्प हम लिए चल रहे हैं।

उच्च शिक्षा में नैतिक शिक्षा को प्रभावशाली ढंग से समावेशित किया जाना चाहिये। यह व्यक्ति को ना केवल अनुशासित बनाती है बल्कि, उसके व्यक्तित्व में नैतिक मूल्यों को स्थापित कर उसे समाज और राष्ट्र के प्रति जवाबदेह बनाती है। अन्यथा हम कभी एक अच्छे और आदर्श समाज का निर्माण नहीं कर पाएंगे।

- जितेन्द्र परमार

शोधार्थी- संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय एक विलक्षण व्यक्तित्व

यह रस ऐसी है बुरो, मत को देत बिगारि।
याते पास न आवहु जेते अही अनारि।।

मानवता के प्रतीक मालवीयजी का प्रेम मानवसमाज तक ही सीमित नहीं था। वह प्राणीमात्र के लिए था। गौसेवा में उन्हें विशेष आनन्द आता था। उन्होंने आजीवन गौ की सेवा की, उसके कल्याण के लिए प्रयत्न किया। पर उनका प्रेम गौ तक ही सीमित नहीं था। कुत्ते आदि जीवों पर भी उनकी दया बनी रहती थी। शिवरामजी वैद्य ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि जब मालवीयजी नवयुवक थे, तब उन्होंने जख्म के दुःख से तड़पते सड़क पर पड़े एक कुत्ते की वेदना से दुःखी हो उस कुत्ते की सेवा की, स्वयं उसके जख्म पर दवा लगायी। इस पुस्तक के लेखक को भी एक बार मालवीयजी की समदर्शिता देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपने से थोड़ी दूर पर शीतल छाया में बैठे एक कुत्ते को देखकर वे प्रेम और आनन्द में मग्न हो कहने लगे कि इसमें जो आत्मा है, वही मुझमें है। जिस प्रकार मुझे इस स्थान पर बैठे शीतल वायु सेवन करने में आनन्द आ रहा है, इस कुत्ते को भी आ रहा है।

मालवीयजी जीवमात्र से कितना स्नेह करते

एक अनमोल शख्सियत

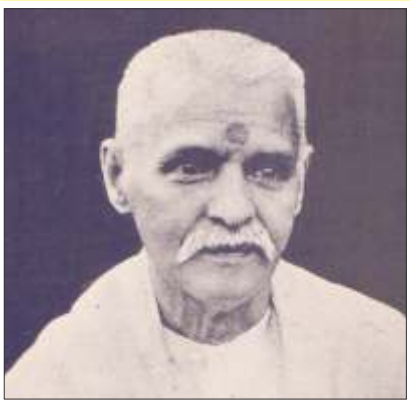

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय

थे, उससे समता का अनुभव करते थे, इसका पता इस रोचक घटनासे भी अच्छे तौर पर लगता है जिसे उन्होंने स्वयं पण्डित रामनरेश त्रिपाठी को सुनाई थी। त्रिपाठी जी लिखते हैं कि मालवीयजी ने उनसे कहा बिछौने पर एक चीटी चढ़ आयी थी, उसे पकड़ कर मैं उसे नीचे उतार देना चाहता था, पर वह हाथ आती ही न थी। इधर पकड़ने जाता तो उधर भाग जाती।

शेष पृष्ठ 2 पर...

सम्पादकीय...

प्रिय प्रबुद्ध पाठकगण,

नमस्कार,

मालवीय प्रकाश के 12वें अंक के संपादन के शुभ अवसर पर आप सभी से पुनः रचनाओं के माध्यम से मिलते हुये अत्यंत हर्ष का अनुभव कर रही हूँ। आप सभी की ग्रीष्म ऋतु में संपादित इस अंक को कृतित्व की उष्मा ने और भी प्रकाशवान व अलंकृत कर दिया है। आप सभी विद्व लेखकों के इन सार्थक प्रयासों के लिये बहुत-बहुत साधुवाद।

विभिन्न प्रकार की समस्याओं से आच्छादित इस कलयुगी माहौल में संस्थान के विचारवान, ऊर्जा से सराबोर लेखकों की रचनायें एवं पाठकों के ऊर्जावान नव जीवन से ओतप्रोत प्रयोगात्मक सुझाव, समस्याओं की तपती रेत में सावन की फुआरों जैसे प्रतीति देते हैं एवं नव अंकुरित लेखकों को, अपने हृदय व मस्तिष्क के भावों और विचारों को शब्दों का जामा पहनाने की हिम्मत देते हैं।

एक संपादक के नाते मेरा यह प्रयास है कि हमारे संस्थान की यह हिंदी पत्रिका केवल एक मनोरंजन की सामग्री न बने, बल्कि आपके सारगार्मित, रचनात्मक कृतियों के नन्हें-नन्हें कदम, हमारे इस प्रयास को हिंदी भाषा के चलायमान करने की दिशा में एक सार्थक कदम साबित हों। संस्थान सदस्यों के मन में हिन्दी भाषा के प्रति आदर एवं गर्व की भावना का विकास कर सकें। आप की नित नवीन कल्पनाशीलता एवं सार्थक रचनात्मकता की ऊर्जा के फल स्वरूप, मालवीय प्रकाश की उपयोगिता व छवि में जो निखार आ रहा है वह हिंदी भाषा रसिकों को न केवल अपनी ओर आकर्षित कर रहा है बल्कि हिन्दी में रूचि को भी बढ़ा रहा है। इस योगदान के लिये आपको हृदय के अंतरतम स्थल से ढेरों धन्यवाद। शुभाषीश।

इन प्रयासों में आपके आशीर्वाद की आंकाक्षा के साथ,

सस्नेह,
आपकी शुभाकांक्षी

भवदीया,
प्राचार्य (डॉ.) ज्योति जोशी

सम्पादिका एवं आचार्य, रसायन शास्त्र विभाग, मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, जयपुर
9413971604, 9549654852, jojo_jaipur@yahoo.com | malaviyaprakash.lokmat@gmail.com | jjoshi.chy@mnit.ac.in

इस अंक में ...

विवरण	पृष्ठ संख्या
निदेशक की कलम से	1
महामना - एक विलक्षण व्यक्तित्व	1
सम्पादकीय	1
उच्च शिक्षा में नैतिक शिक्षा और राष्ट्रवाद	1
अतीत, वर्तमान एवं भविष्य	2
आगे	2
उद्विग्न (परेशान)बहू	2
विद्यार्थी जीवन में भगवद् गीता	3
जीवन का उद्देश्य	3
कच्चे धागे	3
मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूँ	3
प्रगतिशील देश की आधुनिक नारी	3
एक माँ की आस	4
कविता	4
सफलता के वर्तमान मापदण्ड	5
कहानी गुरु और शिष्य	6
आज का रावण कौन है?	6
हे ईश्वर	6
युवा भारत के लिए अधिक बोधपूर्ण है	6

अतीत, वर्तमान एवं भविष्य

प्रायः यह देखने में आता है कि लोग वर्तमान में अपने भविष्य को लेकर बहुत चिंतित रहते हैं। भविष्य के प्रति जागरुक रहना अलग बात हे और चिंचित रहना बिल्कुल अलग। स्मरण रहे कि अतीत बीत गया है और भविष्य जो आया नहीं, उनके बीच जो थोड़ा सा वक्त वर्तमान का है, वही अस्तित्ववान है। शेष सब कल्पना मात्र ही तो है। बीता हुआ कल आज के लिए स्मृति है और आने वाला कल आज का स्वप्न ऐसे में यही प्रयास करें कि अतीत से सीखा जाए, वर्तमान का आनंद लिया जाए और भविष्य की योजना बनाई जाए। दरअसल भविष्य न किसी की भेंट है न कृपा, वह मनुष्य के वर्तमान में किए जाने वाले पुरुषार्थ का परिणाम और अधिकार ही तो है।

एक प्राचीन भारतीय कहावत है आज जैसा बोओगे, वैसा काटोगे, अर्थात् जैसा वर्तमान आप बनाते हैं, उसी के अनुरूप आपका भविष्य स्वतः निर्मित हो जाता है। यदि आप वर्तमान को अपने परिश्रम से सींचते हैं तो भविष्य अपने आप सुनहरा और शानदार हो जाता है। भविष्य वर्तमानका प्रतिफल है, फलश्रुति है, पर वह हमारे वश में नहीं है। ऐसे में अनजान भविष्य के लिए वर्तमान क्यों बिगाड़ें। जो गुजर गया वह भी हमारे वश में नहीं है। उसे हम मिटा नहीं सकते परन्तु उससे कुछ सीखा अवश्य जा सकता है।

आचार्य रामचद्रं शुक्ल कहते हैं कि वर्तमान हमें अँधा बनाए रहता है, अतीत बीच-बीच में हमारी आँखें खोलता रहता है। अतीत में कभी कोई त्रासद घटना हुई भी हो तो भी परिपक्वता इसी में है कि हमें अतीत की दुखद स्मृतियों को छोड़ वर्तमान को आनंदपूर्वक जीने का सतत प्रयास करना चाहिए। सत्य वही है कि जो वर्तमान को साथ लेता है, वह अगला पिछला सभी कुछ साध लेता है।

दीपेश कुमार
एम.टेक., विद्युत अभियांत्रिकी विभाग

आगे

आग खून की प्यासी है,
ना पानी से इसे शांत कर,
प्रचंड अपना तेज कर,
प्रयत्न अपने तेज़ कर,

उठ इस कदर की
गिराने वाला सहम उठे,
डर से इस कदर उभर
कि डराने वाला चौंक उठे,
सफलता का तेज अपना ऐसा दिखा
कि जलने वाला तड़प उठे।

जले ज़ख्म पर हाथ रख,
तू अपमान अपने याद रख,
लगे घाव पर नमक लगा,
लगी आग को और बढ़ा
कि भाप बने वो पानी
जो भजाने इसको लाया जाए
सोच, क्या सितम उनपे ढ़ाया जाए?

जिनने तुझे रोका,
उन रास्तों को तू मोड़ दे,
जिनने तुझे रोका,
उन जंजीरों को तू तोड़ दे,
इन आँसुओं को तू बहने दे,
इन आँखों को कुछ कहने दे,
कि गलती का सबक तो भुगतना होगा।
थोड़ा तो आखिर इस दिल को भी तड़पना होगा।
कब तक, आखिर कब तक,
रोकेगा तू खुद को
कि समय अभी ना आया है,
देख तेरे खुदके ही जीवन पर छाया,
किसी और की दया का साया है।
कहानी का तू अब सुझा,
प्यास इसकी अब तो बुझा
निर्णय अब ये तेरा होगा,
घना अंधेरा या सवेरा होगा
शांत इसे कर सकते हो पानी से,
पर वो खून से अपना रोब दिखा,
तू कर दिखा, कुछ बन दिखा।
कुछ बन दिखा, तू कर दिखा।।

नेहा हासानी
बी.टेक, यूएमटी, धातुकी अभियांत्रिकी

पेज नं. 1 का शेष

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय ...

अपने बचाव के लिए उसका प्रत्येक बार प्रयत्न बड़ा ही प्रिय लग रहा था। एक चींटी में भी जीवन-रक्षा का वैसा ही उद्योग है, जैसा प्रत्येक प्राणी में है। सब में समान जीव है। जब कोई चींटी को लापरवाही से मार देता है, तब मुझे बड़ा कष्ट होता है।

मालवीयजी सात्विककर्ता, तथा उच्च कोटि के नेता थे। उनकी सेवाएँ विस्तृत, व्यापक और महान् थीं। पर उनका बहुगुण-सम्पन्न व्यक्तित्व उन सबसे कहीं अधिक महान् था। उनकी मनुष्यता, शिष्टता, सज्जनता बेजोड़ थी। वे प्रेम, शान्ति, दया, उदारता, विनय, क्षमा और करूणा के अवतार थे। वे संयमी, निर्भीक ओर गम्भीर थे, उत्साही, साहसी और सहनशील थे। उनका जीवन अहंकार, दम्भ, फैशन आदि दुर्गुणों से निर्मुक्त था। वे मृदुता, मुदिता तथा मैत्री की भावना से सम्पन्न थे। वे गुणग्राहक थे। राष्ट्रीय कर्तव्य का निर्वाह, मानव व्यक्तित्व का सम्पन्न थी। वे गुणग्राहक थे। राष्ट्रीय कर्तव्य का निर्वाह, मानव व्यक्तित्व मनुष्यता से अलंकृत था। सत्कार्यों में सहयोग, सौम्यता, भावों की संशुद्धि, सिद्धान्तों और जीवनादर्शों की रक्षा उनके शील के अन्य सद्गुण थे। सभा में राष्ट्रकल्याण की पुष्टि, लोकन्याय का अनुसरण, सदादर्शों से सम्पन्न युक्तियुक्त भाषण, मतभेदों में तितिक्षा, सदा भद्रता का पालन उनका लोकशील था।

मालवीयजी शील के बहुत पक्के थे। उसका उन्हें सदा ध्यान रहता था। जब कभी उनसे उसका उल्लंघन हो जाता, तब उन्हें उसका बहुत संताप होता, और वे संबंधित व्यक्ति से तुरन्त क्षमा प्रार्थना करते। वे अपनी गललितयों को याद रखते, और पाँचवे छठे वर्ष हरिद्वार जाकर विधिवत् सर्व-प्रायश्चित करते, और इस तरह अपने जीवन को निर्मल बनाये रखने का सदा प्रयत्न करते रहते थे।

मालवीयजी का सार्वजनिक सौजन्य बहुत ही उत्कृष्ट था। उनकी स्वच्छता और श्रेष्ठता, उनकी सरलता और विनम्रता, उनकी कोमलता और भद्रता, उनके शिष्टाचार और आतिथ्य सत्कार ने उन सबको, जिन्हें उनके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, अपना प्रिय बना लिया था। वे सदा बड़ों का आदर करते, हाथ जोड कर उनका स्वागत करते, तथा वयोवृद्ध विद्वानों और संबंधियों था। वे जिससे पहली बार मिलते उससे भी ऐसी बातें करते मानों वह चिरपरिचित है, उसे भी परकीय होने का अनुभव नहीं होने देते। घर में कोई अतिथि टिका होता तो जब तक वह भोजन नहीं कर लेता, चाहे वह साधारण श्रेणी का ही क्यों न हो, तब तक वे स्वयं भोजन नहीं करते थे। अतिथि के आराम की क्या व्यवस्था है इस बात की जाँच वे कई बार नौकरों से करते रहते थे।

वे बचपन के अपने साथियों और सहपाठियों से, फिर वे चाहे किसी श्रेणी के हों, कृष्ण सुदामा की तरह स्नेह और आत्मीयता से बातचीत करते थे। श्री सन्त शरण मेहरोत्रा ने बहुत ही मार्मिक ढंग से एक कुंबी जाति के सहपाठी से मालवीय जी के मिलने का एक संस्मरण का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि एक दिन सन् १९४२ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती के उत्सव के पहले वे मालवीयजी के दर्शन करने गये, तब एक बूढ़ा ग्रामीण, जिसकी कमर प्रायः झुक गयी थी, लाठी टेकता दरवाजे पर आया। अपनी पगड़ी उतार कर उसने साष्टांग दंडवत किया, तब मालवीयजी की दृष्टि भी उस पर पड़ी। दृष्टि पड़ते ही जो दृश्य देखा गया वह स्वर्गीय था। दोनों के ही नेत्रों से प्रेमाश्रु गिर रहे थे, और किसी से बोला नहीं जाता था। कुछ समय बाद स्वस्थ्य होने पर कुशल क्षेम, उलहने आरम्भ हुए। एतने दिन कहां रहल? काहे नाही खबर लेहल? तोहई काहे नाहीं खोज लेहल? आदि। आँसू बह रहे हैं, बोला जाता नहीं, कण्ठ भरा आता है। बोलने की इच्छा भी दोनों और बड़ी प्रबल। बात बात में यह तय हुआ कि गले लगकर जेसे हम लोग गाया करते थे, आज गावें। मालवीयजी से तो गद्गद् कण्ठ से बोला ही नहीं जाता था। उन्होंने इशारा किया कि गाओ। वह उनके पैर पकड़ कर गाने लगा। मुंह में दाँत नहीं। पर उसने प्रेम का वातावरण उपस्थित कर दिया। महात्मा जी (गाँधीजी) के पास जाने का प्रस्ताव हुआ। इस सबके बाद वे महाशय नहीं अतिथि हुए।

मालवीयजी मतभेद को व्यक्तिगत विद्वेष या शत्रुता का स्वरूप देना अनुचित ही नहीं, मूर्खता समझते थे। इस द्वेषरहित भावना के कारण जैसा कि मुंशी ईश्वर शरण ने कहा, उससे भी वे भद्रता का व्यवहार करते, और अन्त में वह भी उनका गुणगान करने लगता था। कहा जाता है कि सर राजेन्द्र मुखर्जी को जब यह पता चला कि मालवीयजी इंडस्ट्रियल कमीशन (औद्योगिक आयोग) की रिपोर्ट पर एक असहमति नोट लिखना चाहते है, तब उन्होंने मालवीयजी को बहुत बुरा भला कहा। मालवीय जी चुप रहे। कुछ समय के बाद एक दिन वे सर राजेन्द्र मुखर्जी के घर गये। उन्हें देखकर मुखर्जी साहब ने चकित होकर पूछा, आप मेरे घर कैसे आये, मैंने तो आपको बुरा भला कहा था। यह सुनकर मालवीय जी ने कहा देश के काम में हम सब एक हैं। इसके बाद सर राजेन्द्र ने उन्हें उनके कामों में काफी सहायता दी। वास्तव में वे लोग भी जो सार्वजनिक प्रश्नों पर उनसे (मालवीयजी से) मतभेद रखते थे उनके व्यक्तिगत गुणों के साक्षी थे, और उनके आत्मत्याग तथा देशहित के प्रति उनकी निष्ठा के लिए उनसे प्यार और उनका आदर करते थे। यद्यपि कुछ सरकारी अफसर उनसे क्षुब्ध हो उन्हें घास में छिपा सांप समझते थे, पर बहुत से उच्चस्तरीय अधिकारी उनकी मधुर विवेकशीलता के कायल थे। उनकी सच्चाई पर विश्वास करते थे, स्वीकार करते थे कि निर्दोष जीवन के श्वेत पुष्प से विभूषित मालवीयजी को न डराया जा सकता हे, और न प्रलोभनों द्वारा तोडा जा सकता है, पर उनके सौजन्य और सदभावना पर विश्वास किया जा सकता है। इन सब बातों को देखते हुए पंडित हृदयनाथ कुंजरु ने कहा कि मालवीय जी ने कभी किसी के लिए भूल कर कटुशब्द का प्रयोग नहीं किया और वह अजात शत्रु थे।

विनोद, साहित्य, संगीत

मालवीयजी विनोदप्रिय थे। उन्हें संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के बहुत से पद याद थे। जिन्हें वे प्रसंगानुसार अपने भाषणों और लेखों में उद्धृत करते रहते थे। कभी - कभी अपने विचारों और आन्तरिक भावों को व्यक्त करने के लिए वे बात चीत में भी सहज रूप से कुछ पद सुना देते थे। ये सभी पद शिक्षाप्रद होते थे, ऊँचे धार्मिक सिद्धान्तों, नैतिक आदर्शों, सामाजिक विचारों या भगवद्भक्ति की भावना से विभूषित होते थे। पर मनु और व्यास तथा तुलसी, मीरा और सूरदास आदि के पदों के साथ बिहारी और कालिदास आदि के उच्चकोटि के साहित्यिक दोहे और छन्द भी उन्हें याद थे, जिन्हें वे प्रौढ़ और वृद्ध अवस्था में भी छोटी सी अन्तरंग साहित्य गोष्ठी में सुना देते थे।

उन्हें ग्राम्यगीत भी बहुत पंसद थे। कुछ गीत उन्होंने याद भी कर रखे थे। इन ग्राम्यगीतों को सुनने-सुनाने में वे बहुत आनन्द का अनुभव करते थे। पंडित रामनरेश जी त्रिपाठी तो, जिन्होंने ग्रामगीतों का अच्छा संग्रह किया था, मालवीयजी से जब मिलते तब वे उनसे उन्हें सुनते थे।

पंडित बलदेव उपाध्याय जी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि एक बार एकान्त में मालवीयजी की पंडित बटुकनाथजी से साहित्य की चर्चा चल गयी, तब मालवीयजी ने उन्हें बहुत श्रृङ्गारिक पद्य समुचित अभिनय के साथ कह सुनाये। एक बार काशी विश्वविद्यालय में पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण की अध्यक्षता में कविवर कालिदास पर संगोष्ठी हुई थी, जिसमें कुछ विद्वानों ने उनके काव्य पर कुछ शंकाएं उपस्थित की थीं, जिनका समाधान मालवीय जी ने बहुत उत्तम ढंग से कालिदास के ग्रन्थों के अवतरणों द्वारा किया था।

पर मालवीय जी अश्लील श्रृङ्गार के प्रति रूचि को बुरा समझते थे। उन्होंने इसके विरोध में १४ वर्ष की आयु में लिखा था -

यह रस ऐसी है बुरो, मत को देत बिगारि।
याते पास न आवहु जेते अही अनारि।।

विद्यार्थी जीवन में उन्हें कविता करने का भी शौक था, और उन्होंने उस समय कुछ ऐसी रचनाएँ की थीं, जिन्हें वे कभी-कभी बुढ़ापे में भी नवयुवकों के विनोद के लिए श्रावण मास में अपने अंतरंग कक्ष में आठ-दस पुराने छात्रों की छोटी-मोटी अन्तरंग गोष्ठियों में सुना दिया करते थे। अपने धार्मिक और सामाजिक विचारों के प्रसार के निमित्त इस वयोवृद्ध नेता ने सरल संस्कृत में कुछ श्लोकों और हिन्दी में कुछ छन्दों की भी रचना की थी।

मालवीयजी का स्वर मधुर, सुरीला, सुनम्य और संगीतात्मक था, तथा उनकी प्रकृति कलात्मक थी। अपने पिता की तरह वे भी बचपन से ही संगीत में विशेष अभिरुचि रखते थे। विद्यार्थी जीवन काल में ही वे बहुत भावनात्मक ढंग से बहुत सुरीले स्वर में सूर और मीरा के पदों को गाने-बजाने लगे थे। इस जमाने में ही उन्होंने सितार बजाने का काफी अभ्यास कर लिया था। पर संगीत में पूरी सुविज्ञता प्राप्त करने के लिए जितने अभ्यास की आवश्यकता होती है, उनती उन्हें कहाँ फुर्सत थी? फिर भी कम से कम कंठ संगीत में उन्होंने इतनी निपुणता अवश्य प्राप्त कर ली थी कि विभिन्न रागों में गायकों और संगीतज्ञों की परीक्षा लेते हुए उसकी त्रुटियाँ सुधारी जा सकें। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि एक बार मालवीय जी ने एक गायक से मालकोश, भीमपलासी, केदारा और बिहाग गाने को कहा और अन्त में सोहनी में कुछ गाने को कहा पर जब वे गायक महाशय इस अन्तिम राग को ठीक तौर पर नहीं गा सके, तब मालवीय जी अपनी अस्सी वर्ष की आयु में स्वयं एक सोहनी, जो उन्हें याद थी, गाने लगे। उसके पद इस प्रकार थे -

नींद तोहे बेचोंगे, जो कोउ गाहक होय।
आये रे ललना, फिर गये अंगना,
मैं पापिनि रही सोय।
जो कोउ गाहक होय।

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी अपने संस्मरण में यह भी लिखते हैं कि जब एक बार वह स्वयं मालवीय जी को कुछ ग्रामगीत गा कर सुना रहे थे, तब एक गीत को सुनकर वे उठ बैठे और यह कहकर कि रामनरेश जी, यह मल्हार है, इस तरह गाया जाता है- स्वयं गाने लगे, और उन्होंने उसे उसी स्वर में गाया जिस स्वर में सुलतानपुर जिले के गाँव पापर की एक जीर्ण शीर्ण बुढ़िया, भवाई के मेले में जाती हुई गा रही थी।

इस मल्हार गीत के पद निम्नलिखित थे -

धीरे बहु नदिया तैं धीरे बहु सैयाँ मोरा उतरइंगे पार। धीरे बहु नदिया।
काहेन की तोरी नैया रि काहे की करुवारि।
को तेरा नैया खेवैया रे को धन उतरहू पार।
धरमै के मोरी नैया रे सत के लगी करुवारि।
सैयां मोरा नैया खेवैया रे, हम धन उतरव पार। धीरे बहु नदियां तैं धीरे बहु।।

वाद्य संगीत और कंठ संगीत, दोनों ही मालवीयजी को प्रिय थे। दोनों ही उन्हें अनुप्राणित और आनन्दित करते थे, तथा उनकी थकावट और परेशानी में स्वास्थ्यवर्धक औषधि का काम करते थे। वे जानते थे, जैसा कि उन्होंने मुंशी ईश्वर शरण से कई बार कहा भी था, कि यदि वे प्रतिदिन आधा घंटा अच्छा संगीत सुन सकें तो उनका स्वास्थ्य बहुत सुधर सकता है। पर दूसरे सामाजिक कार्यों में व्यस्त मालवीयजी स्वास्थ्य के निमित्त भी घंटा आधा घंटा नहीं निकाल पाते थे। कभी-कभी तो संगीत गोष्ठी का आयोजन करते करते किसी सार्वजनिक कार्य में संलग्न हो जाते और योजना यों ही पड़ी रह जाती थी पर फिर भी कभी-कभी महादेव कत्थक या गायनाचार्य शिवप्रसादजी आदि की गोष्ठी हो जाती थी और मालवीय जी समुचित मनोयोग से संगीत का रसास्वादन कर पाते थे।

(डॉ.) ज्योति जोशी

उद्विग्न (परेशान) बहू

मैंने चम चमाते दीयों को भी बुझते देखा हैं।
मैंने सुलगते अंगारों को भी राख होते देखा हैं।
मैं तो इंसान हूँ मुझ पर क्यूँ जोर आजमाता है,
मैने पत्थर की मूरत को नेत्रनीर बहाते देखा है।
तू खुश हैं किसी को अपनी ज़र (पत्नी) समझकर,
मैंने अक्सर विदाई पर हर बाप को रोते देखा है।
मत कर इस पवित्र बंधन को तू कंकड़ कंकड़,
मैंने रिश्तों के लिए लोगों की
घिसी चप्पलों को देखा है।
बस गया है घर तेरा पर मत कर गुरूर तू खुद पर,
मैंने ससुर जी को घुंघट की ओट में
रिश्ता मांगते देखा है।
रख थोड़ा सा मान तेरा,
नहीं मांगती मैं तेरा कारोबार।
बुढ़ापे मैं मैंने बहुओं को बेटों की तरह
सेवा करते देखा है।
है तुझे भी गुरूर तो दर दर भटक क्यूँ रहा
बहू की खातिर,
छोड़ आ बेटे को भी मंदिर में,
मैंने बेटियों को भी सीढ़ियों पर छोड़ते देखा है।
ये सच हैं हर कोई रो रहा है इस कदर
मैंने बहू बेटियों को जिनकों मारते देखा है।
मैंने चम चमकते दीयों को भी बुझते देखा हैं।
मैंने सुलगते अंगारों को भी राख होते देखा हैं।

राजेन्द्र प्रसाद जाँगिड़
(तकनीशियन)
वास्तुकला एवं नियोजन विभाग

विद्यार्थी जीवन में भगवद् गीता की उपयोगिता

दुनिया का सबसे विशाल ग्रंथ है महाभारत और इसका एक हिस्सा है भगवद् गीता, कुरुक्षेत्र के मैदान में, जब पांडव और कौरव की कुल अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध के लिए तैयार थी। तभी दोनों सेनाओं के बीच में, अर्जुन के रथ को ले जाकर, श्री कृष्ण ने दुविधा में पड़े अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। गीता में कुल 18 अध्याय हैं और कुल 700 श्लोक हैं, इनमे से श्री कृष्ण ने 574 श्लोको के माध्यम से अपनी बात ने! कही, अर्जुन ने 85 श्लोक, संजय ने 40 श्लोक और धृतराष्ट्र ने केवल 1 श्लोक के माध्यम से अपनी बात कही है। गीता एकमात्र ऐसा ग्रंथ है, जिस पर दुनिया की भाषा में सबसे ज्यादा भाष्य, टीका, व्याख्या, टिप्पणी, निबंध और शोध ग्रंथ आदि लिखे गए है। गीता पर सबसे पहला भाष्य आदि गुरु शंकराचार्य ने लिखा, जिसे शंकर भाष्य कहा जाता है। भगवद् गीता का पहला अंग्रेजी अनुवाद, 1785 में चार्ल्स विल्किन्स ने लंदन में किया। अब तक 175 से अधिक भाषाओं में गीता का अनुवाद किया जा चुका है। हालांकि देश विदेश और स्थानीय स्तर पर देखा जाये, तो 283 विद्वानों के 578 से भी अधिक गीता के अनुवाद अभी तक सामने आए हैं।

भगवद् गीता का महत्व बहुत अधिक है, शंकराचार्य ने स्वयं एक स्थान पर लिखा है -

भगवद्गीता किञ्चिदधीता

गङ्गाजललवकणिका पीता सकृदपि येन मुरारिसमर्चा क्रियते तस्य यमेन न चर्चा भज गोविन्दम् 20

अर्थात गीता का थोड़ा सा भी ज्ञान हो तो, बहुत कल्याणमयी है, और गीता स्वयं कहती हैं, श्री कृष्ण कहते हैं, इस धर्म का थोड़ा सा भी अंश हमें बहुत बड़े भय से बचाता है तो पहले तो हमें यह सोचना है, कि क्या कारण है कि गीता इतनी महत्वपूर्ण मानी जाती है? जिस भी गुरु ने अपना मत स्थापित करने का प्रयत्न किया है, उन्हें गीता के ऊपर लिखना अनिवार्य है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य ने अपने- अपने भाष्य लिखे, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने गीता रहस्य लिखा, श्री अरविन्द ने Essays on the Gita लिखा, डॉ. एनी बेसेंट ने द लॉर्ड सॉन्ग लिखा।

गीता क्यों इतनी महत्वपूर्ण है? इसके चार कारण हैं- पहला कारण तो यह है, कि गीता संघर्ष का शास्त्र है और आज की परिस्थिति में हम एक संघर्षपूर्ण स्थिति में अपने आप को पाते हैं। आज हम एकांत में नहीं है, जिस प्रकार उपनिषद का वातावरण बिल्कुल अलग है, गुरु बैठे हैं उनके साथ कुछ शिष्य बैठे हैं, जो किसी नदी के किनारे या हिमालय की किसी सुंदर स्थान पर बैठे हैं, वहां का वातावरण तो बिल्कुल शांत और सात्विक वातावरण हैं। लेकिन गीता का वातावरण तो बिल्कुल भिन्न है, युद्ध शुरु होने जा रहा है, शंख बज चुके है, प्रक्षेपात्र चलने वाले हैं, दोनों सेनाएं एक दूसरे के विरुद्ध खड़ी हो गई है और उस समय गीता का संदेश आता है आज मानव कोई शांत नहीं है, एकांत नहीं है, चारों ओर हाहाकार मची हुई है, चाहे बीमारी की हाहाकार या परस्पर युद्ध का हाहाकार हो। इसलिए ऐसी परिस्थिति में एक शास्त्र हमें मिलता है जो संघर्ष शास्त्र है, उसका बड़ा महत्व है। इसीलिए वह हमारे हृदय को स्पर्श करता और उसका प्रभाव हम पर पड़ता है

दूसरा कारण है, कि गीता के गुरु है, वह विलक्षण है। हर एक शास्त्र का एक गुरु है, उपनिषद में बहुत बड़े बड़े गुरु हैं- याज्ञवल्क्य है, जनक है। लेकिन गीता के गुरु तो भगवान श्रीकृष्ण स्वयं है, जिन्हें अवतार माना जाता है श्रीकृष्ण के दो रूप हैं, एक वृंदावन के कृष्ण, फिर कुरुक्षेत्र के कृष्ण हैं, उनका व्यक्तित्व बिल्कुल अलग है। लेकिन भगवान कृष्ण स्वयं गुरु है और भगवान के मुख से गीता आती है, इसलिए इसका महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है । क्योंकि कृष्ण कोई साधारण गुरु नहीं है, वह परब्रह्म का स्वरूप है और अर्जुन जो मानव जाति का प्रतीक है, वह भयभीत है । वह ऐसी परिस्थिति में अपने आपको पता है कि, उसे समझ नहीं आता कि उसे क्या करना चाहिए? ऐसी परिस्थिति में कृष्ण अर्जुन से कह हैं, कि तुम अपने गुरुजनो- परिजनों से युद्ध करो, इन पर बाण चलाओ, अर्जुन बहुत भयभीत हैं, ऐसी परिस्थिति में श्रीकृष्ण ने स्वयं बोल रहे हैं, इसलिए ऐसी परिस्थिति में उनकी कही हुई बातें बहुत महत्व रखती हैं।

तीसरा कारण है, गुरु और शिष्य का बहुत घनिष्ठ संबंध रहता है। लेकिन जितना संबंध गुरु और शिष्य का गीता में है, उतना और किसी शास्त्र में नहीं है। विराट रूप दर्शन के बाद अर्जुन साष्टांग करके भगवान श्री कृष्ण से कहता है कि ''आप मुझे इस तरह प्रेम करें जैसे पिता पुत्र से करता है।'' पुत्र पिता का बहुत प्रिय होता है, वर्तमान में तो पुत्रियां, पुत्र से ज्यादा प्रिय होती है। लेकिन उन दिनों में पुत्र को ज्यादा महत्व दिया जाता था। दूसरा, आप मुझे एक मित्र और सखा के जैसे प्रेम करें, मित्रता का कोई वर्ण, वर्ग और धर्म नहीं होता, मित्रता निस्वार्थ होती है। तीसरा, आप मुझे प्रिया और प्रियतम की भांति प्रेम करें। यह तीन प्रकार के प्रेम सम्मिश्रित होकर कृष्ण और अर्जुन के संबंध को दर्शाते हैं । इस संबंध में जितनी घनिष्ठता और सामीप्य दिखाई देता है, और कहीं नजर नहीं आता है। गीता के गुरु है भगवान श्री कृष्ण, जो स्वयं पार्थ सारथी बनकर बैठे हैं, जो अदृश्य होकर नहीं, हमारे साथ बैठकर वार्ता कर रहे हैं ।

कुरुक्षेत्र केवल युद्ध का मैदान नहीं है, आज हमारे हृदय के अंदर ही कुरुक्षेत्र चल रहा है। हमारे अंदर ही दैविक और आसुरी शक्तियों का युद्ध चल रहा है, और श्रीकृष्ण भी हमारे अंदर ही बैठे हैं।

चौथा कारण है, गीता सार्वभौमिक है। गीता किसी एक धर्म या किसी एक देश के लिए नहीं है, यह संपूर्ण मानव जाति के लिए है। महान वैज्ञानिक अल्वर्ट आइंस्टीन ने कहा है जब मैंने भगवद्गीता को पढ़ा, तो मुझे पता चला कि ईश्वर ने कैसे दुनिया को बनाया है और मुझे यह अहसास हुआ कि प्रकृति ने सृष्टि को कितना अद्भुत बनाया है ।

अमेरिका के वैज्ञानिक ओपेनहाइमर (परमाणु बम के जनक), ने परमाणु विस्फोट के प्रयोग (लिटिल बॉय) की सफलता देखी तो गीता का श्लोक बोल पड़े- कालः अस्मि लोक-क्षय-कृत् प्रवृद्धः लोकान् समाहर्तुम् इह प्रवृत्तः ऋते अपि त्वाम् न भविष्यन्ति सर्वे ये अवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः गीता अ. 11 श्लो. 32

खुदीराम बोस, 11 अगस्त 1908 को 18 साल की आयु में हाथ में गीता लेकर हंसते हुए फांसी पर चढ़ गए थे। गीता केवल भारत वर्ष तक सीमित नहीं है, गीता मानव जाति के लिए हैं। नोबल पुरस्कार विजेता फ्रेंच विद्वान रोमां रोलां का कथन है गीता ने यूरोप की अनेक कुरीतियों को धूल धूसरित कर मानव जाति की दार्शनिक-आध्यात्मिक बौद्धिकता को नव दृष्टि प्रदान की है।

गीता की सार्थकता है - गीता संघर्ष का शास्त्र है। गीता में कहा गया है कि आत्मा अमर है, शरीर नश्वर है। गीता ऐसा ग्रंथ है जो संघर्ष के बीच में इसका वाचन हुआ है। गीता पलायन छोड़, कर्तव्य की ओर रास्ता दिखाने वाला ग्रंथ है। दार्शनिकों से लेकर वैज्ञानिकों ने गीता की सराहना की है और अपने जीवन में अपनाया है। कृष्ण के विविध रूपों में सबसे विराट रूप गीता कहे जाने के दौरान ही कुरुक्षेत्र में दिखाई दिया। सृष्टि से लेकर प्रलय तक, जितनी भी चीजों की कल्पना कर सकता है, वह सब कुछ कृष्ण के विराट रूप में मिलता है। गीता में इस को दिखाया गया है। गीता में कहा गया है कि आत्मा अमर है, शरीर नश्वर है। आज के समय में गीता को मैनेजमेंट ग्रंथ के रूप में देखा जा रहा है।

गीता विश्व का सब से बड़ा दार्शनिक ग्रन्थ माना जाता है, और इसीलिए भगवान श्री कृष्ण को सब से बड़ा दार्शनिक कहा जाता है। यह बात सुन कर हमारे मन में आता है, कि दर्शन तो बड़ा जटिल होता है। लेकिन कृष्ण जितने बड़े दार्शनिक थे, उस से बड़े मनोवैज्ञानिक थे और वो बच्चे का मनोविज्ञान समझते थे । वास्तव में गीता आप के लिए लिखी गयी, है क्योकि धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में जो अर्जुन श्री कृष्ण के सामने था, वो शूरवीर योद्धा नहीं था, वो रोता-बिलखता बालक था । वो विषाद से ग्रस्त कलपता हुआ बच्चा था, जैसे कोई छात्र वर्ष भर पढ़ाई करने के बाद परीक्षा के दिन पिता को ये कहे कि मैं परीक्षा देने नहीं जाऊँगा। तो बच्चे के मनोविज्ञान को नहीं समझने वाला पिता, उसे झिड़क कर कहेगा खबरदार ऐसी बात की तो, पूरे साल पढ़ाई की और अब परीक्षा देने नहीं जाओगे, मैं देखता हूँ तुम कैसे नहीं जाओगे ? मैं पकड़ कर लेकर जाऊँगा और तब तक वहा बैठूंगा जब तक तुम परीक्षा नहीं दे देते। ऐसा पिता बच्चे को खो देता है, लेकिन भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को उसके मनोविज्ञान से समझाया और हम देखते है, एक सूत्र चल रहा है पूरी गीता में, जैसे-जैसे अर्जुन की मनोदशा बदलती जा रही है, भगवान की वाणी भी बदलती जा रही है, वो प्रलाप कर रहा है, वो रो रहा है, शिकायत कर रहा है और यहाँ तक कहता है भगवान् से

काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च । किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।।1.32

हे कृष्ण ! मैं न तो विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा सुखों को चाहता हूँ। भगवान सुनते रहते है चुपचाप, गुस्सा नहीं करते, नाराज नहीं होते । वो फिर प्रलाप करता रहता है, प्रथम अध्याय के चालीसवे श्लोक तक, दूसरे अध्याय के दूसरे श्लोक में श्री कृष्ण पहली बार गीता में बोलते है । नाराज होकर नहीं, कहते है ये कैसा मोह हो गया है अर्जुन तुझे ये असमय बोल रहे हो तुम, अरे तुम्हारे सामने खड़े है सब, अपने-अपने रथ पर आरूढ़ होकर आये है । अपने-अपने शस्त्र लेकर आये है और तुम अपना गांडीव नीचे रख कर के कैसी बात कर रहे हो भगवान श्री कृष्ण कहते है-

(शेष पृष्ठ 5 पर)

जीवन का उद्देश्य

जीवन का कुछ ना कुछ उद्देश्य होना आवश्यक क्योंकि जोखिम लेना पछतावा करने से ज्यादा बेहतर है, दरअसल जोख़िम न लेना ही सबसे बड़ी नाकामयाबी है। और अगर जोख़िम लेकर कुछ गलत हो भी तो ये याद रखना कि गलतियाँ इस बात का सबूत है कि आप कोशिश कर रहे हैं।

हमें हमेशा कुछ ना कुछ करते रहना चाहिए कुछ नहीं करोगे तो आप मानसिक पीड़ाओं से जूझ जाओगे और आप जीवन में प्रयास करते रहोगे तो असफलत भी होंगे, कई बार गिरोगे परन्तु जरूरी होता है गिरने के बाद वापस उठने की हिम्मत करना, और जिस गलती की वजह से गिरे उसको सुधारना। उस गलती को सुधारकर आप फिर से उस काम को करोगे, उसमें सफलता मिलेगी तो आपका हर दिन नया सूर्योदय होगा। असफल होने पर लोग मजाक बनाएंगे पर याद रखो जीवन में सबसे बड़ी खुशी उस काम को करने में मिलेगी जिसके लिए लोग तुम्हें बोल देते हैं की ये तुमसे नहीं होगा।

हर समस्या कुछ न कुछ सिखाकर जाएगी बस अपने ऊपर निर्भर करता है कि हम क्या करना चाहते हैं उससे सीख लेकर आगे चलना चाहते हो या फिर वहीं स्थिरहो जाना है। हर सफल इंसान की सफलताओं के पीछे बहुत सी असफलताएं होती हैं। जब आपका हस्ताक्षर ऑटोग्राफ में बदल जाए तो आप खुद को सफल मानने लगें।

राजहंस मीना
वरिष्ठ तकनीशियन, यांत्रिक अभियांत्रिकी विभाग

कच्चे धागे

मधुशाला मैं छोड़ दिया
मदिरालय से मुँह मोड़ लिया
हिन्दु, मुस्लिम, सिख ईसाई
कहाँ है अब ओ भाई-भाई।
कहने को थी वो मधुशाला
पिरोकर रखी थी एक माला
जिसमें हिन्दु, मुस्लिम, सिख, ईसाई
गाते थे एक स्वर में वर्णमाला।
मदिरालय अब टूट गये।
सारे रिश्ते छूट गये।
कलयुग के इस छल के आगे
कच्चे धागे भी अब टूट गये।
रीति - रिवाजों को अब कौन मानता है
पूर्वजों को अब कौन जानता है।
तू मुस्लिम है तो तू काफ़िर है
इस बात पर हम लड़ गये
राम-रहीम के वो किस्से कहीं धुँधले पड़ गये।
किससे शिकायत करूँ मैं जनाब
यहाँ तो सिर्फ मनभवी रह गये।

विनय कुमार सिंह
एम.टेक., यांत्रिकी अभियांत्रिकी विभाग

प्रगतिशील देश की आधुनिक नारी

जिस प्रकार सृष्टि की सुंदरता प्रकृति के बिना अधूरी है उसी प्रकार हमारे देश की उन्नति नारी शक्ति के बिना अधूरी है। आज आवश्यकता है कि हम नारी को उचित शिक्षा और सम्मान देकर देश की उन्नति में भागीदार बनाये। आधुनिक नारी को प्रगतिशील देश में पहचान दिलाने और उसे प्रोत्साहित करने की जिम्मेदारी समाज के हर व्यक्ति की होनी चाहिए क्योंकि आज अगर नारी है तो हमारा अस्तित्व है।

संदेश – प्रकृति से बड़ा कोई नहीं और नारी के सम्मान के बिना जग नहीं। प्रगतिशील देश की आधुनिक नारी न हो निराश, न हताश कभी, तुम हो स्वाभिमानी और खुद्दार भी हो। तुम दबी हुई पहचान नहीं, तुम देश की शान हो। तुम भूली नहीं अपने कर्तव्य को, हर फर्ज दृढ़ता से निभाया है। माता-बहन और पुत्री रहकर, लेखिका, शिक्षिका, व्यवसायी और क्षत्राणी बनाकर दिखाया है। इस पुरुष प्रधान समाज में तुमने, अपना सिक्का जमाया है। दिखाकर हर वो काम जो मर्दों ने किया, आज अपना अस्तित्व बताया है।
ममता और करूणा से ओत-प्रोत, माँ ब्रह्मचारिणी बनकर दिखलाया। आन पड़े जब स्वाभिमान की बात, तो माँ काली अवतार जगाया। जिस युग में नर नारी एक साथ रथ के पहिए की तरह चलते होंगे। ऐसे दिव्य युग में स्वर्णिम भविष्य का सूर्य पताका अवश्य फहराया जाएगा। ''मैं प्रगतिशील देश की आधुनिक नारी''

रिचा कुमारी
संगणक विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग

मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूँ

मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूं,
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।
हैं फूल रोकते, काटें मुझे चलाते
मरुस्थल, पहाड़ चलने की चाह बढ़ाते,
सच कहता हूं जब मुश्किलें ना होती हैं
मेरे पग तब चलने में भी शर्माते,
मेरे संग चलने लगे हवायें जिससे
तुम पथ के कण-कण को तूफान करो।
मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूं,
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।
अंगार अधर पे धर मैं मुस्काया हूँ,
मैं मर्घट से ज़िन्दगी बुला के लाया हूँ,
हूँ आंख-मिचौली खेल चला किस्मत से
सौ बार मृत्यु के गले चूम आया हूँ,
है नहीं स्वीकार दया अपनी भी
तुम मत मुझपर कोई एहसान करो ।
मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूँ,
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।
शर्म के जल से राह सदा सिंचती है.
गति की मशाल आंधी में ही हंसती है,
शोलो से ही श्रिंगार पथिक का होता है
मंजिल की मांग लहू से ही सजती है,
पग में गति आती है, छाले छिलने से
तुम पग-पग पर जलती चट्टान धरो ।
मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूं,
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।
फूलों से जग आसान नहीं होता है
रुकने से पग गतिवान नहीं होता है,
अवरोध नहीं तो संभव नहीं प्रगति भी
है नाश जहां निर्मम वहीं होता है,
मैं बसा सुकून नव स्वर्ग, धरा पर जिससे
तुम मेरी हर बस्ती वीरान करो।
मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूं,
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।
मैं पन्थी तूफ़ानों में राह बनाता
मेरा दुनिया से केवल इतना नाता,
वह मुझे रोकती है अवरोध बिछाकर
मैं ठोकर उसे लगाकर बढ़ता जाता,
मैं ठुकरा सकूं तुम्हें भी हंसकर जिससे
तुम मेरा मन-मानस पाषाण करो।
मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूं,
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो ।

(संकलनकर्त्ता)
डॉ. दीपक कुमार
तकनीकी सहायक (एस जी-।।)
रसायन शास्त्र विभाग

एक माँ की आस

माँ शब्द कहने को तो एक अत्यंत ही सरल, सहज व छोटा सा शब्द है परन्तु इसका अर्थ संपूर्ण ब्रह्मण्ड के समान गहरा अथवा मन को छू लने वाला है। माँ शब्द से ही ममता, ममत्व आदि शब्दों का जन्म हुआ है। संपूर्ण विश्व में लोग माँ को ममता की देवी या ममता के रूप या कहें कि ममता की मूरत के रूप में देखते व समझते हैं। प्रस्तुत कहानी एक ऐसी ही माँ के किए गए निःस्वार्थ कर्मों का उललेख प्रदान करती है।

यह कहानी है भारत के हरियाणा राज्य के एक छोटे से गाँव बाकरियावाल की एक महिला दुर्गा देवी की । दुर्गा एक विधवा है और वह अपना घर चलाने हेतु लोगों के घर खाना बनाने एवं झाड़ू-पोंछे का कार्य करती है। दुर्गा का पति करीब आठ साल पहले दिल की बीमारी के चलते गुजर गया था और तब से ही घर की पूरी जिम्मेदारी तथा बागडोर दुर्गा ने अपने हाथों में ले ली। दुर्गा का एक चौबीस वर्षीय पुत्र राम तथा एक इक्कीस वर्षीय पुत्री जानकी है । पुत्री जानकी का विवाह दूसरे गाँव के जमींदार रवि किशन के पुत्र के साथ दो वर्ष पूर्व हो गया था और अब उसे एक आठ माह की पुत्री है। वहीं दूसरी ओर दुर्गा के पुत्र राम ने हाल ही में अपनी महाविद्यालय की शिक्षा पूर्ण की है और अब वह एक अच्छी नौकरी की खोज में है। दुर्गा ने अपने पुत्र एवं पुत्री की परवरिश तथा लालन-पालन में किसी प्रकार की कोई भी कमी नहीं आने दी है। आर्थिक रूप से सशक्त न होने के बावजूद भी दुर्गा ने एक माँ होने का पूरा दायित्व निभाया और अपने पुत्र एवं पुत्री की शिक्षा पूर्ण करायी । क्या करें, आखिरकार वह एक माँ है और एक माँ अपने बच्चों का वर्तमान एवं भविष्य उज्जवल बनाने हेतु तथा उनकी सही परवरिश के लिए सब कुछ चुप-चाप सहन कर सकती है फिर चाहे उसे समाज के ताने सुनने पड़े या घृणा से पूर्ण समाज के नेत्रों का सामना करना पड़े।

पुत्र राम अपनी माता से बहुत प्रेम करता था तथा उनकी साख की रक्षा के लिए वह कुछ भी कर सकता था। परन्तु भाग्य बड़ी चीज है जिसे स्वयं ईश्वर ने ही लिखा है, अर्थात शायद भाग्य को कुछ और ही मंजूर था। एक दिन जब थकी हारी दुर्गा शाम के समय अपने घर आयी तो उसने पाया कि उसका पुत्र राम अपना सामान बाँध रहा था। यह देखकर वह अत्यंत विचलित हो उठी और उसने अपने पुत्र से पूछा, बेटा तुम अपना सामान क्योंबाँध रहे हो? कठे जा रहे हो? माँ के मुख पर मजबूरी व उदासी की झलक दिखाई पड़रही थी। तभी पुत्र राम ने उत्तर दिया माँ, मुझे एक अच्छी नौकरी मिल गयी है सिरसा में। अच्छी तनख्वाह एवं रहने का पूरा खर्चा अलग से। इसलिए मैं वहां जाने की तैयारी कर रहा हूँ। यह बात सुनते ही दुर्गा स्तब्ध रह गई मानो उसकी रगों में दुख की लहर सी दौड़ पड़ी हो उसने अपने पुत्र राम से इस नौकारी का प्रस्ताव अस्वीकार करने को कहा तथा उससे बाकरियावाल में रहकर ही नौकरी करने का आग्रह किया । परन्तु कुछ सिक्कों की खनक ने शायद माँ की ममता की आवाज को मंद कर दिया था । अगले ही दिन प्रातःकाल राम अपने सारे सामान के साथ सिरसा के लिए रवाना हो गया। अब बूढ़ी माँ के पास विवशता तथा कुछ आंसूही बचे थे जिनका आँचल ओढ़े वह अपने दिनचर्या के कार्यों को पूर्ण करने में व्यस्त हो गयी । परन्तु इस व्यस्तता के बीच दुर्गा के मन का एक छोटा सा कोना था जिसे पूर्णतः आशा थी कि उसका पुत्र एक दिन अवश्य ही लौटेगा और इसी विश्वास को वह अपनी ढाल बनाकर अपना जीवन जीती रही।

वह प्रतिदिन अपने पुत्र राम के नाम की रोटी बनाकर किसी गरीब भिखारी को दे देती थी। ऐसा करने से उसे लगता था मानों वह रोटी राम ने खा ली है। यह कृत्य दुर्गा के हृदय को संतुष्टता प्रदान करता था । ऐसा करते करते दिन बीते, रातें बीती । दिन हफ्तों में बदले, हफ्ते महिनों में तथा महिनें साल में । राम को सिरसा गये हुए अब चार साल बीत चुके थे परन्तु दुर्गा की बूढ़ी आँखों में अभी भी अपने पुत्र का इंतजार व्याप्त था । आखिर कैसे न हो, जब उसका पुत्र इन चार साल उसके साथ न था तो यह इंतजार ही तो था जो उसके साथ प्रतिपल किसी साये के समान रह रहा था।

एक दिन प्रातःकाल जब दुर्गा उठी तो उसने पाया कि एक सज्जन उसके घर के द्वार पर आँखे नीची कर मंदे स्वर में रो रहा था । दुर्गा यह देखकर अत्यंत विचलित हो उठी और कुछ सोच-विचार कर जब वह उस सज्जन के पास गयी तो उसने पाया कि वह सज्जन और कोई नहीं परन्तु वही भिखारी था जिसे वह निस दिन अपने पुत्र राम के नाम की रोटी दान करती थी। जब दुर्गा ने उस भिखारी से उसकी तकलीफ के बारे में पूछा तो उसने उत्तर दिया कि वह हार चुका है। उसने दुर्गा से कहा मेरा पुत्र मुझे छोडकर किसी अन्य स्थान पर नौकरी करने हेतु चला गया है और अब मैं बिलकुल अकेला हूँ। जीवन का क्या पता, यह तो एक बुलबुला है, आज है तो पल में नहीं। मैं अपने जीवन के इन चंद पलों को अपने पुत्र के सानिध्य में बिताना चाहता हूँ ।

यह कथन सुनकर दुर्गा को अपने पुत्र राम की याद आ गयी और उसने उस भिखारी को समझाते हुए कहा कि माँ-बाप अपने बच्चों के सबसे अच्छे गुरू व मित्र होते हैं, जो न केवल सुख के समय उनकी खुशियों का हिस्सा बनते है परन्तु दुख की घड़ियों में भी उनके आगे ढाल बनकर खड़े रहते है। दुर्गा ने कहा कि माँ-बाप का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चों के हर निर्णय में उनका साथ दें और उनका साथ कभी न छोड़े। दुर्गा ने कहा कि जब मेरा पुत्र राम मुझे छोड़कर सिरसा जाने की तैयारी कर रहा था तब मुझे भी लगा था कि मेरा तो सब कुछ राम के जाने से ही खत्म हो गया है परन्तु इन चार सालों में मैंने अपने पुत्र को प्रतिपल याद किया है और उसके इस निर्णय के पीछे छिपी सोच व कारण को भी समझा व जाना है। बीते इन चार सालों में ही मैं अपने पुत्र की मनःस्थिति को समझ सकी और आज मैं उसके द्वारा लिए गए निर्णय का सम्मान करती हूँ ।

जब दुर्गा अपने मन की बात उस भिखारी को समझा रही थी तब उसने देखा कि आँगन में लगे एक पेड़ के पीछे कोई व्यक्ति खड़ा हुआ है। जब दुर्गा उस पेड़ के पास गयी तो उसके नेत्रों ने वो देखा जो उसकेनेत्र देखने के लिए चार साल से तरस ही रहे थे। अपने पुत्र राम को खड़ा पाकर बूढ़ी माँ प्रफुलित हो उठी और उसकी आँखों में बसे बीते चार वर्षों का इंतजार समाप्त होता दिखाई पड़ रहा था। उस दिन दुर्गा ने अपने पुत्र राम के रूप में मानो सब कुछ पा लिया था । राम ने अपनी माँ की कही हुई सारी बातें सुन ली थी और वह बिना समय गवाये अपनी माता के आगे नतमस्तक हो गया । राम की चुप्पी तथा उसकी आँखों में अपनी माँ के लिए बढ़ा हुआ सम्मान संपूर्ण कहानी कह गया था। इन चार सालों में वह भी अपनी माँ के सानिध्य को प्राप्त करने हेतु बेचैन था और आज वह समय आ गया था जब पूरे चार वर्षों के बाद वह अपनी माँ को गले लगाकर अपने हृदय की बात कह सकता था। शायद यह दुर्गा के सच्चे मन से किये गए कर्म, सेवा, निःस्वार्थ प्रेम तथा अपने पुत्र के प्रति उसका समर्पण ही था कि आज उसका पुत्र राम न केवल वापस लौटा था परन्तु एक जिम्मेदार व्यक्ति और सही मायने में एक आदर्श पुत्र बनकर अपनी माँ के समक्ष आया था, जिसने दुर्गा को अपने इस चार वर्ष के कड़े इंतजार का बड़ा ही सुगम फल प्रदान किया था। एक माँ का अंतर्मन सब कुछ भाप सकता है और यह कहना गलत न होगा कि एक माँ की आस कभी व्यर्थ नहीं जाती।

ईशान अरोड़ा
शोधार्थी, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग

कविता

1. टूटे मक़ा.....

छोड़ हुए आदिल
बादलों की गोद में सर झुकाये बैठे
आलिम-ओ-रंजिश के गवाह
टूटे मका......
गोया बदस्तूर राह ताकते उठ्ते गिरते टूटते
टूटे मका.....
मेरे सपनों के गवाह आते जाते बिखरते बिलखते
नौशाद के जालिम पन्नों में काबिज़
सोया जहाँ रात भर
टूटे मका......

2. छोड़ जाएंगे हम ये जहाँ तन्हा...

देखो जरा मेरी आँखों में गौर से ये तुमसे कुछ कहेंगी
कहेंगी कैसा लगता है तुम्हें देखकर, सोचकर, और जाते-जाते छोडकर
मिलेगा तुमको एक छोटा सा मोती इन आँखों में
दुनिया इसे आँसू कहती है, पर तुम देखना इसमें खुद को
मिलेगी एक रंज-ए-बहार की दुनिया एक अजीब खामोशी
डूबते चाँद सितारों की दुनिया और फिर देखना तुम इन आंखों को
जब .... छोड़ जाएंगे हम ये जहाँ तन्हा......

3. कौन थी वो, क्या रह गया उसमें....

एक सहर-ए-यार थी वो
बस अकीदा रह गया उसमें एक गुमनाम सब थी वो
बस रुबाब रह गया उसमें एक अजब वसल थी वो
बस कुर्बत रह गई उसमें
एक इनायत थी वो
बस सुकून रह गया उसमें एक रिवायत थी वो
बस हर्फ रह गया उसमें
एक कशिश थी वो
बस ताबीर रह गई उसमें
एक शिद्दत थी वो बस शिकस्त रह गई उसमें
एक नूर थी वो
बस मोहब्बत रह गई उसमें.....

4. रहने दो.....

रहने दो अपने सारे सवाल जवाब रुबाब सबाब रहने दो
रहने दो हमको कांटो के बीच
ये बिस्तर अब अपना सा नहीं लगता रहने दो मेरी बातों को मेरे दिल में यार तू मुझे अब अपना सा नहीं लगता.....
रहने दो
रहने दो
रहने दो ये चांद सूरज फलक सितारों की बात रहने दो दर्द मोहब्बत दिलकशी जाने की बात
रहने दो उन बिखरे पन्नो को मेरे पास यार तू अब मेरी जुदाई का मलाल नहीं रखता..... आते हैं वो अब हमारी कब्र पर
रहने दो
यार तेरे साथ अब जन्नत में मन नहीं लगता
रह गई बात रह गई मसले रह गई दुनिया
आखिरी गुजारिश की अब मुझे भी रहने दो यार तेरा ना होना अब मुझे खराब नहीं लगता.....

5. कभी.....

कभी मैं वो हूं
जिसने सब कुछ कमाया कभी वो जो सब हार बैठा कभी हर कांटे ने डराया कभी सारी रात, दिन को तरसे कभी मैंने अपनी मौत को जगाया.....
कभी मैंने झालरें सजायी
कभी मैं अंधेरो में सोया
कभी मैंने सोलह चांद देखे
कभी मैं खाली हाथ बैठा
कभी मैंने हुन आजमाया कभी सारी चाहत सोक डाली
कभी हर गम में मुस्कुराया में कभी बिन बात के रोया
कभी मैंने जिंदगी जीना सिखाया
कभी मैं एक उम्र को तरसा
कभी सारे घाव भर डाले मैंने
कभी महफिलों को बनाया मैंने कभी हर शक्स को भुलाया

6. अब तो खुश हो ना......

अब तो खुश हो ना क्योंकी तुम्हारे दिए कांटे जो थे वो बुन दिए हमने दाग जो थे वो सिल दिए हमने घाव जो थे वो भर दिए हमने और क्या हुआ और हुआ यूं की दर्द जो था वो दबा लिया हमने मार जो थी वो सह ली हमने न देखना था वो देखा लिया हमने फिर आखिरी में हुआ यूं की रास्ते जो थे वो बदल लिए हमने मन्नत जो थी वो मांग ली हमने और और जो सांसे थी वो रोक ली हमने..... अब तो खुश हो ना

7. अगर.....

होते अगर हम हवा
रातों को गुफ्तगू करते करते उनसे उनके चर्चे टूटे पत्तौ को सजदा करते फिर कहते हम उनसे अपनी सफाई में अपने जुर्मो को बयान करते दर्द होता जब वो जाते हमें छोड़ हम उनके कदमो में सलाम करते खुश रहता जमाना हमें अलग देखकर हम तेरे साए से ऐतबार करते फिर जहां दिखते हमें बंजर खेत अपने आसुओं से उन्हें आबाद करते......

8. आखिरी......

मेरे गुनाहों का हिसाब हुआ.... और मिली जब सजा-ए-मौत हमें....लोग मुझसे पूछा किया.... तब मैंने कहा-
शोर मचाना कभी आदत थी मेरी
यही बात फिर सजा बन गई....
चुनिंदा रिश्ते गवाह थे मेरे यही बात फिर सजा बन गई.... सोचा दोबारा आऊंगा इस जहां में, अपने मिजाज का नया चेहरा बनाके यही बात फिर सजा बन गई.....
बात फिर खुदा तक पंहुची ..... हम दोनों बैठे एक शाम में......
फिर क्या हुआ.... फिर.
फिर वही तराने हर शाम में जगमगाते जुगनू हर शाम में
रंग बदलते मौसम हर शाम में चेहरे बदलते इंसान हर शाम में जवाब देते आसमां हर शाम में अपनी जमीं तरासते सूरमा हर शाम में ..... और और ढलते ख्वाब तेरे-मेरे हर शाम में.....

हिमांशु गाहोत्री
एम.एमसी, भौतिक विज्ञान विभाग

पृष्ठ 3 को शेष

विद्यार्थी जीवन में भगवद् गीता की उपयोगिता

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।

ये दिल की कमजोरी छोड़ अर्जुन, खड़ा हो, फिर उन्हें लगता है, अकेले मेरे कहने से ये नहीं मानेगा । तो थोड़ा सन्देश देते है, कि तुम क्यों भ्रमित हो? तुम क्या सोच रहे हो, कि तुम इन्हें नहीं मारोगे? तुम बार-बार यह कह रहे हो, कि मेरे गुरु जन खड़े हैं, मेरे परिजन खड़े हैं, मैं इन्हें कैसे मारू? अरे यह तो पहले ही मरे हुए हैं, तुम किसको मारोगे? एक शरीर है और एक आत्मा है। शरीर तो नाशवान है, तुम नहीं मारोगे तो कोई और मार देगा। बीमारी से मर जाएंगे, यह शरीर तो नश्वर है, आज नहीं तो कल जाएगा ही जाएगा और रही आत्मा, उसे तो कोई नहीं मार सकता। तो तुम कौन हो मारने वाले? तुम किसकी बात कर रहे हो, वह जीवात्मा जो ना शस्त्र से कट सकती है, ना अग्नि से जल सकती है, ना वायु से सूख सकती है, तुम उसको मारने की बात कर रहे हो? भगवान को लगता है, अब भी अर्जुन को समझ नहीं आई, तो लालच देते हैं, लोभ देते हैं, कहते हैं-

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।।2.37

अच्छा मेरी बात सुन, देख तेरे दोनों हाथों में लड्डू है। अगर युद्ध में मारा जाएगा, तो स्वर्ग मिलेगा और अगर जीत जाएगा, तो राज्य मिलेगा । तो फिर क्यों प्रलाप कर रहा है? उठ, निश्चित तौर पर युद्ध कर । जब उन्हें लगता है, यह लालच मे भी नहीं समझ रहा है, तो भगवान को एक बात सूझती है, कि यह सोचता है कि मैं इसका सारथी हूँ, मित्र हूँ, मेरी बात यह क्यों सुनेगा? मैं तो सारथी बनकर खड़ा हूँ, यह मुझे एक सारथी, एक साधारण मनुष्य मान रहा है, तब भगवान चौथे अध्याय में कहते हैं कि-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्
4.7 परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे 4.8

अर्जुन! तुम मुझे साधारण मनुष्य मान रहे हो ना, क्योंकि मैं तेरा सारथी बनकर खड़ा हूँ? हे कौन्तेय! मैं मनुष्य के रूप में अवतार लेकर आया हूं और जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब मैं आता हूँ, जब-जब अधर्म बढता है, तब-तब में आता हूँ । सज्जन लोगों की रक्षा के लिए मैं आता हूँ, दुष्टों के विनाश करने के लिए मैं आता हूँ, धर्म की स्थापना करने के लिए में आता हूँ और युग-युग में जन्म लेता हूँ । तुम मुझे अपना सारथी मानकर के, साधारण मानव के जैसे व्यवहार कर रहे हो । मैं इस सृष्टि का जन्मदाता हूँ, इस सृष्टि का रचयिता हूँ। मैं इस सृष्टि का पालनकर्ता हूँ और मैं इस सृष्टि का संहारक भी हूँ, मैं साक्षात ईश्वर हूँ। फिर आगे की बात करते हैं, फिर उसकी समझ में नहीं आता, तो उन्हें लगता है, कि इसको सुनाने से नहीं चलेगा, दिखाने से चलेगा । फिर भगवान श्रीकृष्ण दसवें अध्याय में विभूति योग में अपनी विभूतियां बताते हैं ।

उससे भी अर्जुन अचंभित जरूर होता है, लेकिन समझता नहीं है। तो फिर विराट रुप का दर्शन कराते हैं, विश्वरूप दर्शन योग और उसमें दो तरह के भाव दिखाते हैं, ऐसे दृश्य भी दिखाते हैं, जिसे देखकर अर्जुन आनंदित होता है और ऐसे दृश्य भी दिखाते हैं, जिसे देखकर अर्जुन भयभीत होता है। विराट रुप दर्शन करा कर भगवान श्रीकृष्ण को लगता है, अब तो समझ जाएगा, फिर भी अर्जुन नहीं समझता है । तो खीझ कर कहते हैं, 18 वे अध्याय के 63 वे श्लोक में-

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।।18.63

जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर, हे कौन्तेय, मैंने रहस्य से रहस्यमयी ज्ञान तुझे दिया, गोपनीय से गोपनीय बात तुझे बता दी । अब इसके बाद तेरी इच्छा है, जो तेरी इच्छा है वह कर । लेकिन अगले ही क्षण भगवान सोचते हैं, कि इस विषाद से ग्रस्त व्यक्ति को यदि अपनी इच्छा पर छोड़ दिया, तो यह तो कह देगा मैं नहीं करूंगा । मेरा तो सारा का सारा दिया हुआ ज्ञान व्यर्थ हो जाएगा । तो अगले ही श्लोक में फिर समझाते है, कि तुझे और वचन सुनाता हूँ, तुम सुनो, लेकिन वहां कोई ज्ञान नहीं देते, वहां केवल आश्वासन देते हैं। भरीमा दिखाते हैं, विश्वास देते हैं और उस विश्वास की पराकाष्ठा आती है, 18 वे अध्याय के 66 वें श्लोक में, श्रीकृष्ण कहते हैं-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।18.66

सब धर्मों का परित्याग करके तुम एक मेरी ही शरण में आ जाओ, आ अर्जुन! मेरी गोद में बैठ जा, मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो। ऐसा भगवान इसलिए कहते हैं, क्योंकि अर्जुन पूरे समय प्रलाप करते हुए कहता है कि मैं गुरुजनो, बंधु बांधव और परिजनों को मारुंगा तो मुझे पाप लगेगा, तो भगवान श्रीकृष्ण को लगता है, कि जब तक मैं यह नहीं कहूंगा, कि मैं तुझे पापों से मुक्त कर दूंगा, तब तक यह नहीं मानेगा । इतना अपनत्व, ममत्व और भरोसे से भरा यह श्लोक, यह है आपके लिए, गीता जटिल नहीं है, गीता में भगवान कहते है, तुम एक बार मेरी शरण में आओ तो सही, इसीलिए उन्हें शरणागत वत्सल कहा जाता है। तुम मेरा भक्त बनो तो सही, इसीलिए उन्हें भक्तवत्सल कहा जाता है। गीता में जो दर्शन है, दार्शनिकता को देखकर भागो मत, कृष्ण तो बाहें फैलाए खड़े हैं, एक बार उनकी शरण में जाओ तो, एक बार उनकी भक्ति करो तो, फिर देखो किस तरह वह आश्वासन देकर, पिता की तरह आपको अपनी गोद में बैठाने को तैयार हो जाते हैं।

हमारा जीवन, कृष्ण कृपा और कृष्ण इच्छा के बीच में झूलता है। जीवन में दो ही तरह की घटनाएं घटती है, या तो मन के अनुकूल या मन के प्रतिकूल। अगर अनुकूल होता है, तो उसे कृष्ण कृपा मानना चाहिए । अगर प्रतिकूल होता है, तो उसे कृष्ण इच्छा मानकर स्वीकार करना चाहिए। संपूर्ण समर्पण, अटूट विश्वास यही भगवद् गीता का भाव है। गीता के पूरे 18 अध्याय में, एक साझा सूत्र चलता है, जिसे अंग्रेजी में Common thread कहते हैं और वह है, कर्म का त्याग नहीं करना । गीता कर्म छोड़ने के लिए नहीं कहती है और दूसरा है कर्म में आसक्ति नहीं, करने का अहंकार नहीं, कर्म के बाद फल की इच्छा नहीं अर्थात् कर्म करो और कृष्ण को अर्पण कर दो. और जो वह दे उसे कृपा ही मानो । इच्छा मत मानो, क्योंकि उसकी इच्छा भी कृपा बनकर बरसती है। आज जो उसकी इच्छा है, हमें मालूम नहीं कि उस इच्छा में भी उसकी कृपा ही छुपी है ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।2.47

हम गीता को अपने जीवन का आदर्श बना ले और सब कुछ भगवान को समर्पित कर दे । लेकिन इसे जीना मुश्किल है और इसे जीने का रास्ता है भगवद् गीता का पठन और मनन, नहीं समझ में आए, तो अगले दिन फिर पठन, फिर मनन । जब इन श्लोकों का अर्थ जीवन में ढाल लेंगे आगे बढ़ते जाएंगे । हो सकता है, कुछ समय लग जाए, लेकिन अभी आपकी उम्र ही क्या है? जिंदगी जीने का काम तो तब आएगा, जब आप पढ़ाई समाप्त करके जिंदगी की दहलीज पर कदम रखेंगे।

सभी तरह की तकनीक गीता के सामने छोटी हो जाती है, जब श्रीकृष्ण का यह दर्शन, एक बालक के मनोविज्ञान की तरह आम छात्र को समझाने का काम करता है, जीवन जीना सिखाने का काम करता है। तकनीक हमें जीवन जीना नहीं सिखा सकती, कृष्ण का दर्शन और कृष्ण का मनोविज्ञान जीवन जीना सिखाता है। जिस दिन हम जीवन जीना सीख जाएंगे, उसके बाद कुछ बाकी नहीं रहेगा। अगर हम गीता का पूर्ण आश्रय ले, अपना कर्म कृष्ण को अर्पण करके प्रारंभ करेंगे और फल की इच्छा ना करते हुए, उसका फल ईश्वर पर छोड़ देंगे, तो जिस तरह का जीवन भगवान हमारे लिए चाहते हैं, वैसा जीवन हम जियेंगे।

कृष्णं वंदे जगद्गुरुम

- मानसिंह राठौड़, शोधार्थी विभाग

सफलता के वर्तमान मापदण्ड

देश की लिए जीना ही अपने लिए जीना है - **परमार्थ ही स्वार्थ है । नर सेवा नारायण सेवा ।**

सफलता के वर्तमान मापदंड

भौतिकता की चमक से हतप्रभ और उच्च आदर्शों के अभाव में मनुष्य आज भौतिकता के समक्ष नतमस्तक हो गया है। वह अपना सम्पूर्ण जीवन अपनी कामनाओं की तुष्टि के लिए समर्पित कर देता है। और उसका सारा जीवन उसके चारों ओर उपस्थित मनुष्यों से प्रतिस्पर्धा करते हुए व्यतीत होता है ।

उसके जीवन की सफलता का एकमात्र मापदंड यह है कि उसका और उसके परिवार का जीवन कितने सुख से बीत रहा है और सम्बन्धियों, मित्रों और साथी मनुष्यों की अपेक्षा वह कितना समृद्ध, सम्मानीय और सशक्त है।

अज्ञान पर आधारित मापदंड

थोड़ा ध्यान से चिंतन करने पर हमें समझ आएगा कि हमारी सोच और मापदंड कितने छोटे और खोखले हैं।

मृत्यु से हार कर हमने उसे अपनी नियति मान लिया है। अपनी इन्द्रियों की सीमाओं में कैद, आत्मा के प्रति अनभिज्ञ, अपनी सार्वभौमिकता और एकात्मता के प्रति अनजान हमने अपनी इस क्षुद्र देह और क्षुद्र जीवन मात्र को अपना विस्तार (पूर्ण अस्तित्व) मान लिया है, और क्षणिक देहिक और प्राणिक सुखों को ही जीवन का ध्येय, सार्थकता और सफलता मान लिया है।

आत्मज्ञान और मनुष्य के जीवन का उद्देश्य

वस्तुतः हम भगवान के पुत्र हैं ।

कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद शुकरहस्योपनिषद में इसे इस प्रकार कहा गया है - **अहम् ब्रह्मास्मि। तत् त्वमसि ।अयमात्मा ब्रह्म।**

स्वामी विवेकानन्द ने इस सत्य को इस प्रकार कहा है।एक शब्द में कहें तो तुम ही परमात्मा हो।

वेद, उपनिषद्, गीता इत्यादि शास्त्रों में भी इसी सत्य को घोषित किया गया है।

परन्तु मनुष्य जो वस्तुतः प्रकृति का स्वामी है आज उसका दास बन कर जी रहा है।

वह अमर है परन्तु मृत्यु के पाश में जकड़ा हुआ है। वह स्वयम् ज्ञान का सूर्य है परन्तु अज्ञान के अन्धकार में भटक रहा है। वह आनन्द स्वरूप है परन्तु घोर दुःख भोग रहा है। इस परम सत्य को प्राप्त करना, शाश्वतता, चेतना और आनंद को प्राप्त करना ही हमारा तर्क संगत धर्म

असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मा अमृतं गमय। (बृहदारण्यक उपनिषद्)

असत्य से सत्य की ओर चलें, अंधकार से प्रकाश की ओर चलें, मृत्यु से अमरता की ओर चलें। शास्त्रों के अनुसार यही हमारे जीवन वास्तविक लक्ष्य है । जाने अनजाने हम इसी - परमार्थ ही स्वार्थ है- देश के लिए जीना हमारा धर्म भी है और स्वार्थ भी वेद, उपनिषद् गीता इत्यादि शास्त्रों में न केवल इस परम-गुह्य सत्य की घोषणा की है अपितु इसको प्राप्त करने के अनेकानेक मार्गों का विस्तार से वर्णन भी किया गया है। उसमें से एक मार्ग है यज्ञ का मार्ग अथवा त्याग का मार्ग।

इसलिए यदि हम स्वार्थी हैं और हम अपने सर्वोच्च सत्य को पाना चाहते हैं तो हमें उत्सर्ग करना होगा । मानवमात्र में प्रतिष्ठित भगवान् को अपना जीवन समर्पित करना होगा अर्थात् मानवजाति की सेवा करनी होगी।

नर सेवा नारायण सेवा स्वामी विवेकानन्द-

इस ज्ञान को संरक्षित रखने के लिए, और अपने सत्य को पाने के लिए भारत माता की सेवा से अधिक श्रेष्ठ कार्य और कोई नहीं है। ज आज देश एक भयानक संकट उसे गुजर रहा है चारों ओर अराजकता, भ्रष्टाचार, गरीबी और अज्ञानता - का बोल-बाला है। विदेशी ताकतें देश को कमजोर करने और तोड़ने के लिए सदा तत्पर हैं। ऐसे समय में भारत माता की सेवा से अधिक आवश्यक और श्रेष्ठ कार्य और कोई नहीं है। यही भगवान की इच्छा है, इसलिए यह हमारा धर्म भी है, और यही वह मार्ग (अर्थात् नर सेवा समाज सेवा भारत माता की सेवा) हमारे स्वयम् की सिद्धि के लिए सबसे अधिक उपयुक्त और सबसे अधिक सुगम है।

स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, धर्म क्या है ?

दूसरे मनुष्यों की सेवा करना, लाखों जप तप के बराबर है। म राम राम करने से कोई धार्मिक नहीं हो जाता। जो प्रभु की इच्छानुसार काम करता है वही धार्मिक है। यह जीवन अल्पकालीन है, संसार की विलासिता क्षणिक है, लेकिन जो दूसरों के लिए जीते है, वास्तव में वे ही जीते है ।

भारत का उद्देश्य

भारत के लिए जीने से पूर्व हमें जानना होगा कि अनेकानेक देशों के मध्य भारत का उद्देश्य क्या है, उसका क्या दायित्व है।

भारत का भविष्य बिलकुल स्पष्ट है। भारत संसार का गुरु है। जगत् की भावी संरचना भारत पर निर्भर है। भारत जीवित जाग्रत आत्मा है। भारत जगत् में अध्यात्मिक ज्ञान को मूर्तमान कर रहा है । (श्रीअरविंद)

श्रीकृष्ण के वचन, श्री अरविन्द के मुख से वे (हिन्दू जाति) सनातन धर्म के लिये उठ रहे हैं, वे अपने - लिये नहीं बल्कि संसार के लिये उठ रहे हैं। मैं उन्हें संसार की सेवा के लिये स्वतंत्रता दे रहा हूं। अतएव जब यह कहा जाता है कि भारतवर्ष ऊपर उठेगा तो उसका अर्थ होता है सनातन धर्म ऊपर उठेगा। जब कहा जाता है कि भारतवर्ष महान् होगा तो उसका अर्थ होता है सनातन धर्म महान् होगा। जब कहा जाता है कि भारतवर्ष बढ़ेगा और फैलेगा तो इसका अर्थ होता है सनातन धर्म बढ़ेगा और संसार पर छा जायेगा। धर्म के लिये और धर्म के द्वारा ही भारत का अस्तित्व है। (30 मई 1902 उत्तरपाड़ा भाषण, श्री अरविंद)

यह हिन्दुजाति सनातन धर्म को लेकर ही पैदा हुई है, उसी को लेकर चलती है और उसी को लेकर पनपती है। जब सनातन धर्म की हानि होती है तब इस जाति की भी अवनति होती है और यदि सनातन धर्म का विनाश संभव होता तो सनातन धर्म के साथ ही साथ इस जाति का विनाश हो जाता। सनातन धर्म ही है राष्ट्रीयता (30 मई 1909. उत्तरपाड़ा भाषण, श्री अरविंद)

भारत की वर्तमान समस्याओं को जानना होगा और भारत के उद्देश्य को जानना होगा सबसे अधिक आवश्यक है कि हम अपने इतिहास और दर्शन का अध्ययन करें इतिहास से हमें अपने पर गर्व, विश्वास और व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है और दर्शन से दिशा और भावी मार्ग की रचना का ज्ञान प्राप्त होता है। के लिए भारत की अवधारणा को जानना और उसकी रक्षा करना होगा, भारत की उन्नति और समृद्धि कार्य करना होगा ।

किसी राष्ट्र के इतिहास में ऐसे काल आते हैं जब भगवान् उसके आगे एक कार्य, एक लक्ष्य रखते हैं जिस पर हर वस्तु, जो अपने आप में कितनी भी उच्च और उदात्त क्यों न हो, न्यौछावर कर देनी होती है । हमारी मातृभूमि के लिए ऐसा काल आ गया है जब उसकी सेवा से बढ़ कर प्रिय और कोई वस्तु नहीं हो सकती, जब अन्य सभी वस्तुएं उसकी ओर निदेशित कर दी जाएं।

यदि तुम अध्ययन करो तो उसके लिए अध्ययन करो, अपने शरीर मन और आत्मा को उसकी सेवा के लिए प्रशिक्षित करो। तुम अपनी आजीविका कमाओ ताकि तुम उसके लिए जी सको । तुम विदेशों में जाओ ताकि वहां से ऐसा ज्ञान लेकर लौट सको जिससे तुम उसकी सेवा कर सको । काम इसलिए करो कि वह समृद्ध हो सके। कष्ट झेलो ताकि वह प्रसन्न हो सके। (श्रीअरविंद, 15 अगस्त, 1947 को देशवासियों के नाम दिए गए सन्देश से) और यदि यही कार्य हम निस्वार्थ, त्याग और समता भाव से कर सकें तो न केवल इससे देश की उन्नति हो सकेगी अपितु हम अपने जीवन को भी सफल कर सकेंगे।

प्रो. निरुपम रस्तोगी
यांत्रिकी अभियांत्रिकी विभाग

कहानी गुरु और शिष्य

एक बार की बात है एक गुरु और शिष्य जंगल के रास्ते से कहीं जा रहे थे तो रास्ते में शाम होने लगी और उनको पानी की प्यास लगी तो पास में एक गांव आया और जैसे ही वह गांव में पहुंचे तो देखा कि एक झोपड़ी थी वो झोपड़ी की तरफ गए और उन्होंने आवाज लगाई तब ही एक आदमी और उनकी पत्नी साथ ही साथ में उनके तीन बच्चे भी आये जो फटे पुराने कपड़े पहने हुए थे गुरु यह सब दृश्य देख रहे थे कि इतना बड़ा खेत है इन्होंने फसल इसमें नहीं लगाई हुई है तो गुरु ने सबसे पहले तो पानी के लिए आग्रह किया कि हमें पानी मिल सकता है तो उन्होंने गुरु और शिष्य को पानी पिलाया अचानक गुरु ने कहा कि अगर आप इसमें खेती नहीं करते तो फिर अपना जीवन यापन किस तरीके से चलाते हैं तो उस आदमी ने कहा कि हमारे पास एक भैंस है और इस भैंस का दूध बेचकर के पैसे कमाते हैं और इसी से हम आजीविका चलाते है।

गुरु ने उनकी इस बात को ध्यान पूर्वक सुना और उनके बीच में कुछ देर तक बातचीत हुई लेकिन अंधेरा हो चुका था तो उन्होंने यह निर्णय लिया कि आज की रात हम यही रुकेंगे तो लगभग मध्य रात्रि के करीब गुरु ने शिष्य से कहा कि हमें इस भैंस को ले जाना होगा और इस भैंस को ले जाकर कहीं जंगल में छोड़ना होगा तो शिष्य ने सोचा कि इस तरीके का गलत काम भला मैं कैसे कर सकता हूं अगर मैं इस भैंस को लेकर के जाऊंगा तो यह आदमी बाद में अपना जीवन यापन कैसे करेगा लेकिन गुरु का आदेश था उसको करना पड़ा वह अपने गुरु के साथ चला गया और आधी रात को गुरु और शिष्य निकल लिए लेकिन भैंस को भी अपने साथ ले आए और बहुत दूर छोड़ दिया ताकि वहां से भैंस वापस अपने गांव में ना आ सके।

तकरीबन 10 साल बाद जब वह शिष्य भी गुरु बन चुका था और दीक्षा देने का काम भी करने लग गया था तो उसने सोचा कि 10 साल पहले मुझसे जो गलती हुई थी क्यों ना मैं आज उस गलती को सुधार लूं और मुझे उस आदमी के पास जाना चाहिए वह उस आदमी के पास जाता है लेकिन वहां पहुंच कर वह देखता है कि खेत में फसलें लहरा रही है और बगीचे लगे हुए हैं वह सोचता है कि शायद हो सकता है कि वह आदमी अपना घर- बार बेच कर अपनी जमीन बेचकर शहर में कई चला गया हो।

लेकिन तब ही अचानक वह आदमी आया और उस गुरु को नमन करता है कि मैने आपको पहचान लिया बरसों पहले आप और आपके गुरु साथ आए थे लेकिन उस दिन रात को अचानक पता नहीं क्या हुआ कि हमारी भैंस हमें छोड़ कर चली गई और अब हमें कोई दूसरा काम करना था जिससे हमारी आजीविका पुनः सुचारू रूप से चल सके लेकिन हमारे पास कोई विकल्प नहीं था तो मैं जंगल से लकड़ियां काट के लाता था और उसी से जीवन यापन करता था मैंने बहुत मेहनत की, आम के बगीचे लगाए, धीरे-धीरे आम के बगीचे से लोग आम खरीदने लगे और धीरे-धीरे मेरा आम का बगीचा बड़ा होने लगा और मुझे अच्छे खासे फल और उनसे पैसे मिलने लगे और मेरा बिजनेस बढ़ता गया मेरा काम बढ़ता गया अंततः यह जो आप देख रहे हैं वह 10 सालों की मेहनत का नतीजा है। तो कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है हमेशा परिवर्तन तभी होता है जब आपके पास कोई विकल्प नहीं होता है आपके पास जो रास्ता होता है आप उसी पर चलते हैं और जब आप उसी रास्ते पर चलते हैं तो जीवन में आपको सफलता जरूर मिलती है।

(संकलनकर्त्ता)

दीपक सैनी

कार्य सहायक रसायन शास्त्र विभाग

आज का रावण कौन है?

बड़ा ही सरल प्रश्न है।

सबके पास इसका उत्तर है, या ये कहना गलत नहीं होगा की सब इसका उत्तर है। लेकिन कोई भी इस प्रश्न को समझना नहीं चाहता है। कहा जाता है रावण महान ज्ञानी था बहुत वीर था, सोने की लंका का मालिक था।

लेकिन वो सतयुग का रावण था आज बरसों बाद भी उसको जलाया जाता है और उसके जलने का जश्न मनाया जाता है। लेकिन मेरा प्रश्न अभी भी वहीं है कलयुग का रावण कौन है? आज का रावण कौन है? वो अमीर जो अपने स्वार्थ के लिए, किसी गरीब का हक छीन रहा है, रावण है।

वो ज्ञानी जो अपने ज्ञान का गलत उपयोग करके जग का अहित कर रहा है, रावण है। वो पाखण्डी जो भोली-भाली जनता को लूट रहा है, रावण है। वो मंत्री जी मंत्री सिर्फ अपनी कुर्सी के लिये, गरीब का आशियाना छीन रहा है। रावण है। वो भ्रष्टाचारी कर्मचारी जो चापलूस है, कामचोर है, रिश्वतखोर है, रावण है।

वो इंसान जो नापाक इरादों से हर काम को अंजाम देता है, आज का रावण है। वो जिसका ज़मीर मर गया जिसकी आत्मा खत्म हो गई, आज का रावण है।

वो जो आपका दोस्त बनकर आपकी पीठ में छुरा घोंपे आज का रावण है। हर वो आदमी जो आंखे होते हुए भी अंधा है, जिसकी बुरी नजरें रावण के किये गये काम का अनुसरण कर रही हैं। जहाँ देखी नारी वही बुरी नजरें मारी आज का रावण है देखो देखो आपके आस पास कितने रावण है।

वो विचारा दस सर वाला था, जिसको आप आज तक जलाते हो लेकिन आज के इतने सारे कलयुग के रावण को कैसे खत्म करोगे। असली रावण को मारो पुतले को जलाने से क्या होगा सिर्फ और सिर्फ पैसे की बर्बादी, प्रदूषण का खतरा अपने मन के रावण को मारो, जलाओ, खत्म करो और खुशी से मन से सबके साथ दशहरा मनाओ।

- संतोष शर्मा

हे ईश्वर

मानव है तेरी सुगम संरचना,
तुझे पाने की वो करे कामना ।
ढूँढे तुझे वो हर गली और गलियारा,
पर तू तो है कण-कण उजियारा ।।

सूरज और चाँद सब तुझ ही से रौशन,
तू ही तो है अपार ऊर्जा का खनन ।
किन्तु मनुष्य देखे तुझे केवल मन्दिर में,
न समझे वो कि तू बसे मन मन्दिर में ।।

प्रकृति है तेरा बसेरा,
तुझसे ही नित रैन सवेरा ।
कण-कण है तुझ ही से रोशन,
तेरी भक्ति से है सार्थक जीवन।।
फिर क्यों न देखें तेरे स्त्रोत मनुष्य,
जो है अति आतुल्य व अमूल्य ।
जल, वायु, अग्नि, अंबर और धरा,
सब में है तू भरा।।

तुझसे ही है यह पंचतत्व,
इन्ही से है मनुष्य का अस्तित्व,
फिर क्यों पत्थर को पूजे मनुष्य ।
जब यह पंचतत्व है अति अमूल्य,
क्यों न मानव बचाये इनकी साख,
क्यों कर रहा है जीवन को खाक

जीवन है इन तत्वों की महाभेंट,
फिर क्यों चढ़ा रहा है मानव इनकी भेंट
यदि साक्षात रूप में पाना है
उस परमपिता को,
तो आज ही संकल्प लो
और इन्हें बचालो ।।

ईशान अरोड़ा

शोधार्थी,

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग

युवा भारत के लिए अधिक बोधपूर्ण है सार्थक जीवन

युवा भारत की सफलता को लेकर दुविधा !

आईटी सिटी बेंगलुरु में रह रहा एक 58 लाख के पैकेज पाने वाला प्रोफेशनल ने लिखा की मैं सभी सुविधाओं में रह रहा हूं, लेकिन मैं अकेला पड़ गया हूं. एक ही तरह की जिंदगी से बोर हो गया हूं, मैं अपनी जिंदगी से खुश नहीं हूं, मैं क्या करूं, कैसे अपनी खुशी हासिल करूं? बेंगलुरु के इंजीनियर की इस बात ने सोशल मीडिया तथा समाचार पत्रों में एक नई बहस जीवन मूल्य और उसको जीने वालों की क्या हो इस पर शुरू हुई है। जीवन मे सच्ची सफलता क्या है? सफल कौन है ? सफलता की परिभाषा क्या है? क्या भौतिक ऐश्वर्य, संसाधनों तथा धन आदि से परिपूरित जीवन ही सफलता का असली मतलब है? मानव सभ्यता सदियों से विकसित हुई है। हर पीढ़ी की अपनी सोच और विचार होते हैं जो समाज के विकास की दिशा में योगदान देते हैं। हालांकि एक तरफ मानव मन और बुद्धि समय गुज़रने के साथ काफी विकसित हो गई है, वहीं लोग भी काफी बेसब्र हो गए हैं। आज का युवा प्रतिभा और क्षमता वाला है। आज का युवा सीखने और नई चीजों को तलाशने के लिए उत्सुक है। युवा पीढ़ी आज विभिन्न चीजों को पूरा करने की जल्दबाजी में है और अंत में परिणाम प्राप्त करने की दिशा में इतना मग्न हो जाता है कि उन्होंने इसका चयन किस लिए किया इस ओर ध्यान ही नहीं दे पाता है। हालांकि विज्ञान, प्रौद्योगिकी, गणित, वास्तुकला, इंजीनियरिंग और अन्य क्षेत्रों में बहुत प्रगति हुई है पर हम इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकते हैं कि युवा भारत में अवसाद तथा जीवन को लेकर दुविधा की दर में भी समय के साथ काफ़ी वृद्धि हुई है। यह अटल सत्य है की जिंदगी संघर्षमय है। रोज एक नयी चुनौती का सामना हमें करना पड़ता है। इस जिंदगी रूपी खेल में जंहा हमने एक स्तर पार कर लिया, तो दूसरा स्तर स्वतः तैयार हो जाता है । एक नया संघर्ष, एक नया लक्ष्य फिर तैयार हो जाता है। आज के इस एकल परिवार एवं आर्थिक चुनौतियों से संघर्ष करते दौर में सामाजिक, सांस्कृतिक विरासत खत्म हो रही है। जिससे व्यक्ति का जीवन सम्पूर्ण उपलब्धता के बावजूद भी आत्मिक सुख शांति का अनुभव नहीं कर पा रहा है ।

जीवन का स्वभाव है विस्तार और फैलाव, मनुष्य की सारी गति एवं प्रगति का अंतिम लक्ष्य है अनंत विस्तार को पा जाना, इतना विस्तार की फिर कुछ भी पाने को शेष नहीं रह जाये। इसलिए मनुष्य एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर गति करता रहता है और एक दिन समाप्त हो जाता है। क्या भौतिक जगत में उपलब्ध संसाधनों, दौलत, शोहरत, सम्पति, पद, सम्मान, रिश्ता, या कुछ भी ऐसा जो मनुष्य की इस अंतहीन प्यास और खोज को पूरा कर सके, वह सभी सुख के कारक हैं ? क्या इनको पाकर व्यक्ति पूर्णतः सुखी हो जाता है? बेंगलुरु युवा की कहानी को देख कर इसका उत्तर 'नहीं' में ही मिलता है। फिर यह कैसी सफलता है ? जहां व्यक्ति की आय से मिलने वाली वाली खुशी क्षणिक और सीमित है। जहां परिजनों, रिश्तेदारों और मित्रों के साथ रह पाना संभव नहीं है! क्यों की मनुष्य जीवन में आत्माभिव्यक्ति एवं आत्म संतोष के प्रकटीकरण के लिए सामाजिक पूंजी की महती आवश्यकता होती है।

सफलता एवं असफलता सदैव से एक बहस का विषय रहा है। एक की सफलता दूसरे के लिए असफलता हो सकती है। किसी के लिए 100 रुपये दिनभर में कमाना सफलता हो सकती है तो किसी और के लिए दिनभर में लाखों कमाना भी भारी असफलता हो सकती है, किसी के लिए दूसरों की मदद करना, सेवा करना सफलता है तो किसी के लिए दूसरों के जीवन मे परेशानी खड़ा करना खुशी देता है । इस बात के पीछे एक तर्क दिया जाता है की आप को जो पसंद हो वो प्राप्त करना सफलता है।

लेकिन भारतीय दर्शन व्यक्तिगत खुशी को सफलता के पैमाना नहीं मानता। वह तो ''**आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च**'' को जीवन का लक्ष्य बताता है, मनुष्य जीवन का पुरुषार्थ है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सूत्र रूप में जीना। धर्म के नियंत्रण में काम एवं अर्थ का उपार्जन करना। यहां पैसा कमाने का निषेध नहीं, पर पैसों के पीछे पागल होने का निषेध है। धर्म का यदि नियंत्रण होगा तो व्यक्ति अनीति और अन्याय से पैसों का उपार्जन नहीं करेगा। धर्म हमें एक मर्यादा का रास्ता बताता है। नीति पूर्वक, न्याय सहित जीवन हमें सिखाता है कि धन हमारे जीवन के निर्वाह का साधन है साध्य नहीं । हमारे समक्ष असंख्य महापुरुषों का जीवन इस सिद्धांत की पुष्टि करता है। बुद्ध की सफलता श्रावस्ती राज्य को संभालने में नहीं बुद्धत्व (ज्ञान) की प्राप्ति में था, जिनके सामने तत्कालीन अजेय सम्राट बिंबसार का सर झुकता था। युवा नरेंद्र की सफलता स्वामी विवेकानंद बनकर नर सेवा नारायण सेवा में निहित था । जहाँ बाल गंगाधर तिलक की सफलता स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है में था, तो वहीं सुभाष चंद्र बोस के लिए आईसीएस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करने के बाद देश सेवा करना ही सफलता था। अफ्रीका से वकालत की पढाई करने वाला युवा! अपनी सफलता भारत की विपन्नता दासता और गरीबी से मुक्त कराने को मान, आजादी के आंदोलन में कूद पड़ता है, जिसे दुनिया महात्मा गाँधी के रूप में जानती है। वहीं चेन्नई के रामनाथपुरम में पैदा हुए डॉक्टर अब्दुल कलाम अपनी सफलता धन कमाने में नहीं बल्कि संघर्ष करती भारतीय एजेंसी डीआरडीओ तथा इसरो को उत्कर्ष पर पहुंचने में मानते हैं। मूक बधिरों के लिए मिराकल कुरिऑर की स्थापना करने वाला युवा उद्यमी ध्रुव लकड़ा के लिए सफलता का मायने जन सरोकार है तो वहीं कारगिल विजय के नायक मेजर विक्रम बत्रा के लिए सफलता मातृभूमि पर सर्वस्य समर्पण कर देने में है ।

इसका यह अर्थ नहीं है की धन, संपत्ति और उपलब्धियों का कोई मूल्य नहीं है, परन्तु बोधपूर्वक जीना तथा समाज के लिए अपरिहार्य बन कर जीने में ही वास्तविक सफलता और खुशी है। तब यह बोधपूर्ण जीवन केवल मात्र सफल ही नहीं बल्कि सार्थक भी कहलायेगा। इसलिए सफल जीवन से महत्वपूर्ण है सार्थक जीवन तथा सफलता से बढ़ कर है सार्थकता।

बिरेन्द्र पाण्डेय - राजभाषा कार्यान्वयन
दिग्दर्शिका के लेखक केन्द्रीय पुस्तकालय

समय यात्रा

धर्म के इस प्रचार में
बातें कहूँ प्रतिकार की
विश्वास की, प्रहार की
कहूँ ये तब की बात मैं
जब हर शीश में उस ईश का टीका लगाया जाता था
दिल में बसते थे राम और सीता को सजाया जाता था
स्वर्ण के उस काल की ये बात अभी भी बाकी है
राधा के पग पे माथ हो और हृदय में कृष्ण की झांकी है
मन में मात्र प्रेम के भाव न वो भर सके
धर्म की राह में नंगे पाव वो ही चल सके
आज का ये वक्त है जब हर मोड़ पे खून रक्त है
धर्म धर्म करे सभी, धर्म को न समझे कोई
बांटे खुद धर्म से कर्म से न बांटे कोई
मिट गई लकीर वो जो इंसान हमें बनाती है
बंट गए हर कोई ये कैसी धर्म की झांकी है
मिसाल दे कोई हिंदू की कोई मुसलमान की ईसाई की
मर्द आज का बना निर्बल हृदय, कसाई भी
एक रीत थी जो भी गई, प्रेम की, ब्रह्मचर्य की
कहूँ ये आज की बात मैं
इस धर्म के नए प्रचार की
दुर्व्यवहार, बलात्कार की
कहूँ ये आज की बात मैं
इस धर्म के नए प्रचार की।

आयुष कुमार

बी.टेक. जनपद अभियांत्रिकी विभाग

सावधान रहिये आपके प्रत्येक अभिव्यक्त, अनअभिव्यक्त क्रिया की प्रतिक्रिया होती है।

प्रकाशक एवं **सम्पादक आचार्य (डॉ.) ज्योति जोशी**, मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, जयपुर, मालवीय नगर, जयपुर-302 017 • फोन : 9413971604, ई-मेल : malaviyaprakash.lokmat@gmail.com
लेजर टाईप सैटिंग एवं मुद्रण स्थल : द् प्रिण्ट पैलेस, कैलगिरी रोड, मालवीय नगर, जयपुर-302 017 • फोन : 0141-4002016 • www.theprintpalace.com